श्रीधादर्श

३७

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
मार्च १९९९

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

शोधादर्श-३७

मार्च १९९९

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : प्रभाचन्द्र —श्री रमा कान्त जैन ५
२. दोषाणां कारणं मद्यम् —डा० ज्योति प्रसाद जैन ९
३. सम्पादकीय : पदवियों की मर्यादा का भी ध्यान रखें —श्री अजित प्रसाद जैन १२
४. योग परम्परा —डा० रञ्जन कुमार १७
५. भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट चातुर्याम धर्म —डा० (श्रीमती) जैनमती जैन २७
६. कबीर साहित्य में जैन अध्यात्म की झलक— श्री पन्ना लाल जैन ३५
७. षट्खण्डागम का खण्ड विभाग —पं० नेमचन्द डोणगांवकर ३८
८. जैन परम्परा में देव समूह —श्री गुलाब चन्द्र जैन ४३
९. ॐ—एक विमर्श —डा० मनोहर भण्डारी ४८
१०. कैन्सर में तब्दील होती शोरसेनी की गांठ—पं० पद्मचन्द्र शास्त्री ४९
११. Man-Made God —श्री कैलाश भूषण जिन्दल ५५

१२. शोध सार
पं० राजमल्ल कृत पञ्चाध्यायी में
प्रतिपादित जैन-दर्शन —डा० (श्रीमती) मनोरमा जैन ५८

१३. बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है —श्री राजीव कान्त जैन ६५

१४. अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे —श्री वीरेन्द्र अंशुमाली ६७

१५. विचार विन्दु
जैन पंथोपपंथी बांधव अपनी भूमिका पर विचार करें
—श्रीमती वासंती शाह ६८

१६. चिन्तन कण : निगंट्ठ नातपुत्त —श्री अजित प्रसाद जैन ७१

१७. परिचर्चा : भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि
—श्री अजित प्रसाद जैन ७५

१८. रिपोर्ट
इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म-जयन्ती
—श्री नलिन कान्त जैन ८१

१९. साहित्य सत्कार
आत्म साक्षात्कार का पथ—जैन अयोग साधना
—श्री अजित प्रसाद जैन ८४

जयोदय महाकाव्य परिशीलन; जैन गजट : विशेषांक;
सदलगा के सन्त; आत्मान्वेषी; हिन्दी साहित्य की
सन्त काव्य-परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर
के कृतित्व का अनुशीलन; सरल जैन विवाह विधि,
एवं सिलान्यासादि मुहूर्त संग्रह; भगवान ऋषभदेव
काव्य शतक एवं भजन संग्रह; सोना ही सोना;
दर्शन-पूजन विधि (प्रारम्भिक जानकारी व अर्थ);
क ख ग ; नीम की छांव; दूर्वा बालसाहित्यविशेषांक
—श्री रमा कान्त जैन ८४

देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव; शाकाहार;
संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के
जैन मनीषियों का योगदान; पञ्चाल (११);
अनेकान्त दर्पण ; सम्यक् विकास;
Sambodhi (XXI) : चर्च का भारत में

अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र; धर्ममंगल (गझल व सत्संग विशेषांक);
समकालीन मराठी जैन कथा संग्रह (३ भाग);
ज़िन्दगी —डा० शशि कान्त ९१

२०. समाचार विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
नवोदित तीर्थं—योगीन्द्र गिरि ९६
बिच्छु और विद्वान—एक समाना ९७
सेलो फोन से बात करते मुनि श्री ९९
विद्वत् परिषद के चुनाव और विभाजन १०१

२१. अभिनन्दन १०५

२२. समाचार विविधा १०८

२३. शोक संवेदन ११४

२४. आभार ११५

२५. पाठकों की दृष्टि में ११७
डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, डा० अभय प्रकाश जैन,
श्री वेद प्रकाश गर्ग, डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी,
श्री मदन मोहन वर्मा, श्री रोहित कुमार जैन,
श्री सुखमाल चन्द जैन, डा० विनोद कुमार तिवारी,
डा० पी० जी० मिश्रीकोटकर, डा० (श्रीमती) रमा जैन,
डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, श्री पद्म चन्द्र शास्त्री,
श्री सुबोध कुमार जैन, श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त',
डा० परमानन्द जड़िया, सिंघई मोती लाल 'विजय',
श्रीमती विमला जैन, श्री मुकुल जैन, कु० राखी जैन,
पं० नेम चन्द डोणगांवकर, डा० ए० एल० श्रीवास्तव,
डा० ओम प्रकाश त्रिवेदी, डा० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल,
प्रो० विमल प्रकाश जैन

२६. इस अंक के लेखक १२६

मूल्य १५ रु०
वार्षिक शुल्क ४० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

आवश्यक

कृपया वर्ष १९९९ का वार्षिक शुल्क ४० रु० (चालीस रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को यथाशीघ्र भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श-३७

वीर निर्वाण संवत् २५२५ मार्च १९९९ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

प्रभाचन्द्र

जयतु प्रभेन्दुसूरिः प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तण्डेन ।
यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम् ।।

× × ×

माणिक्यनन्दिरचितं क्वनुसूत्रवृन्दं
क्वाल्पीयसी मम मतिस्तु तदीय भक्त्या ।
तादृक् प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन
कुर्वे प्रभेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम् ।।

—चारुकीर्ति कृत **प्रमेयरत्नमालालंकार**

भावार्थ—जिनके मुख से निस्सृत प्रमेय कमल रूपी प्रकाण्ड मार्त्तण्ड ने विद्वानों के अखिल अन्धकार (अज्ञान अन्धकार) को हर लिया उन प्रभाचन्द्र सूरि की जय हो !

कहाँ माणिक्यनन्दि द्वारा रचित सूत्र-समूह, कहाँ मेरी अल्प मति, किन्तु उनकी भक्ति से और उसी प्रकार के प्रभाचन्द्र के वचनों का परिशीलन करके विद्वानों का हर्ष बढ़ाने वाले प्रभेन्दु (इन्दु की प्रभा वाले ग्रन्थ **प्रमेयरत्नमालालंकार**) की अब रचना करता हूं ।

श्रीधाराधिप भोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मि-च्छटा-
च्छाया-कुङ्कुम-पङ्कलिप्त चरणाम्भोजात लक्ष्मीधवः ।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि-
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणि श्रीमान्प्रभाचन्द्रमा ।।१७।।

श्रीचतुर्मुख-देवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः ।
पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादि-गजाङ्कुशः ।।१८।।

—**जैन शिलालेख संग्रह**, भाग १,
शिलालेख ५५/६९, पद्य १७ व १८

भावार्थ—श्री धाराधीश भोजराज के मुकुट में जड़ी मणियों की रश्मियों (किरणों) की कान्ति से जिनके चरण कमलों की श्री कस्तूरी-चन्दन लेप के समान भासित होती थी अर्थात् जिनके चरणों में मणिजटित मुकुटधारी द्वारा नरेश भोजराज नमस्कार करते थे, जो न्याय रूपी कमल समूह को मण्डित करने वाले दिनमणि (मार्त्तण्ड) थे [अर्थात् जो **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** के रचयिता थे], जो शब्दाब्ज (शब्द रूपी कमलों) को विकसित करने वाले रोदोमणि (भास्कर) थे [अर्थात् जिन्होंने **शब्दाम्भोजभास्कर** की रचना की थी] और जो पण्डित-पुण्डरीकों (पण्डित रूपी कमलों) को प्रफुल्लित करने वाले तरणि (सूर्य) थे ऐसे श्रीमान् प्रभाचन्द्र चिरजीवि हों अर्थात् उनका यश अक्षुण्ण रहे ! श्री चतुर्म्मुख देवों के शिष्य, प्रवादियों द्वारा अविजित, रुद्रवादि गजों पर अंकुश रखने वाले ऐसे श्री प्रभाचन्द्र पण्डित थे ।

माणिक्यनन्दी जिनराज-वाणी-प्राणाधिनाथः परवादिमर्द्दी ।
चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्त्तण्ड-वृद्धौ नितरां व्यदीपित् ।।
सुखिने न्यायकुमुदचन्द्रोदये कृतेः नमः ।
शाकटायनकृतसूत्र न्यासकर्त्रे व्रती प्रभेन्दवे ।।

—**जैन शिलालेख संग्रह**, भाग ३, शि० ले० ६६७
(नगर तालुक शिमोगा का शि० ले० ४६)

भावार्थ—माणिक्यनन्दी जिनराज की वाणी के प्राणनाथ [अर्थात् जिनेन्द्र की वाणी पर अधिकार रखने वाले] और विरोधी मतों के वादियों का मर्दन करने वाले [अर्थात् उन्हें वाद-विवाद में परास्त करने वाले] थे। आश्चर्य है कि इस पृथ्वी पर मार्त्तण्ड (सूर्य) की वृद्धि में चन्द्रमा की प्रभा बराबर सन्नद्ध रही ! प्रकारान्तर से इसका अर्थ है कि प्रभाचन्द्र ने प्रमेय रूपी कमलों को उद्भासित

करने वाले मार्त्तण्ड का कार्य किया अर्थात् उन्होंने **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** ग्रन्थ की रचना की। सुखदायी **न्यायकुमुदचन्द्र** कृति का उदय करने वाले और शाकटायन रचित सूत्रों (व्याकरण सूत्रों) पर न्यास (व्याख्या) के कर्ता व्रती प्रभाचन्द्र को नमस्कार !

ऊपर **प्रमेयरत्नमालालंकार** में और शिलालेखों में जिन वाद-विवाद विजेता व्रती पण्डित प्रभाचन्द्र सूरि को सादर स्मरण किया गया है वे माणिक्यनन्दि (ल० ९५०-१०५० ई०) के न्याय विषयक सूत्र ग्रन्थ **परीक्षामुख** पर धारा नरेश भोजराज (१०१०-१०५३ ई०) के राज्यकाल में १२००० श्लोक प्रमाण टीका **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड**, देवनन्दि पूज्यपाद (४६४-५२४ ई०) के व्याकरण ग्रन्थ **जैनेन्द्र महा-न्यास** पर **शब्दाम्भोजभास्कर** (जो तीन-साढ़े तीन अध्याय तक अपूर्ण रूप में उपलब्ध बताया जाता है), न्याय विषय पर ही एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **न्यायकुमुदचन्द्र**, और शाकटायन (राष्ट्रकूट नरेश अमोघ-वर्ष के राज्यकाल ८१५-७७ ई०) के व्याकरण सम्बन्धी सूत्र ग्रन्थ पर **शाकटायनन्यास**, के रचयिता थे। **न्यायकुमुदचन्द्र** की प्रशस्ति में—

अभिभूय निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्बोधिः।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभ प्रबन्धः प्रभाचन्द्रः॥

से विदित होता है कि उन्होंने एक प्रबन्ध की भी रचना की थी। गद्य में निबद्ध उक्त **आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध** की प्रशस्ति में उल्लेख है कि श्रीमत्प्रभाचन्द्र पण्डित ने श्रीजयसिंह देव के राज्य में उसकी रचना की थी।

इनके अतिरिक्त आचार्य कुन्दकुन्द (ई० पू० ८-४४ ई०) के **पंचत्थिपाहुण** (पंचास्तिकाय) पर **पंचास्तिकाय प्रदीप**, और **प्रवचन-सार** पर **प्रवचनसार-सरोजभास्कर** नामक टिप्पण ग्रन्थ, गृद्ध-पिच्छाचार्य उमास्वाति (४०-९० ई०) के **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** पर देवनन्दि पूज्यपाद की **तत्त्वार्थवृत्ति** के विषम पदों का संक्षिप्त अर्थ सूचक टिप्पण ग्रंथ **तत्त्वार्थवृत्तिपद**, आचार्य समन्तभद्र (ल० १२०-१८५ ई०) कृत **रत्नकरन्ड श्रावकाचार** पर **रत्नकरण्डकश्रावकाचार-टीका**, देवनन्दि पूज्यपाद के **समाधितन्त्र** पर **समाधितन्त्र-टीका**,

आदिपुराणकार जिनसेन (७७०-८५० ई०) के शिष्य गुणभद्र कृत **आत्मानुशासन** पर **आत्मानुशासनतिलक** नामक टिप्पण, पुष्पदंत की **महापुराण** (९६५ ई०) पर **महापुराण-टिप्पण,** तथा पद्मनंदि सैद्धांतिक की रचना **क्रियाकलाप** पर **क्रियाकलाप टीका** रचने का श्रेय भी प्रभाचन्द्र को दिया जाता है। चूंकि प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान आचार्य हुए हैं, अतः यह गवेषणा का विषय है कि क्या उपर्युल्लिखित सभी कृतियां **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** के रचयिता प्रभाचन्द्र की ही हैं।

प्रमेयकमलमार्त्तण्ड की प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्यों में प्रभाचन्द्र ने श्रीमाणिक्यनन्दि की गुरु रूप में वंदना करते हुए अपने को श्रीपद्मनन्दि सैद्धांत का शिष्य और रत्ननन्दि के पदों में रत सूचित किया है—

गुरुः श्रीनंदिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः।
नन्दताद्दुरितैकान्तरजाजैनमतार्णवः॥
श्रीपद्मनन्दिसैद्धांतशिष्योऽनेक गुणालयः।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्ननन्दिपदेरतः॥

तत्त्वार्थवृत्तिपद और **क्रियाकलापटीका** की प्रशस्तियों में भी इनके कर्ता प्रभाचन्द्र ने अपने को श्रीपद्मनन्दि सैद्धांतिक का शिष्य बताया है, अस्तु ये चारों कृतियां एक ही प्रभाचन्द्र की हैं।

प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र व आराधना-सत्कथा-प्रबंध की भांति **पंचास्तिकाय प्रदीप** और **समाधितन्त्र-टीका** (समाधिशतक-टीका) में रचनाकार ने अपने नाम के पूर्व पण्डित विशेषण का प्रयोग किया है, अतः इनके रचनाकार एक ही प्रभाचन्द्र प्रतीत होते हैं।

समाधितन्त्र-टीका से शैलीगत साम्य तथा **आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध** में पायी जाने वाली कथाओं से साम्य के आधार पर **रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका** के कर्ता भी उक्त पण्डित प्रभाचन्द्र हैं।

जैन शिलालेख संग्रह, भाग-१, में संकलित श्रवणबेलगोल से प्राप्त शिलालेख ४०, जो शक संवत् १०८५ (११६३ ई०) का है,

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

दोषाणां कारणं मद्यम्

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

शरीर के संरक्षण एवं पोषण के लिए उपयुक्त भोजन-पान अनिवार्यतः आवश्यक है। मनुष्य की यह भौतिक देह अर्थ, काम आदि लौकिक पुरुषार्थों के साधन का ही माध्यम नहीं है वरन् 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्'—धर्म साधन का माध्यम भी प्रत्यक्षतः यह शरीर ही है। अतएव जिन पदार्थों के खान-पान से शरीर स्वस्थ, पुष्ट एवं कार्यक्षम बना रहे उनका उचित सेवन किया ही जाना चाहिए। किन्तु जबकि जीने के लिए खाना-पीना आवश्यक है, मात्र खाने-पीने के लिए जीना विकृत बुद्धि का परिणाम है। होता यह है कि लोग प्रायः इस तथ्य पर ध्यान नहीं देते कि जीवन धारण, शरीर पोषण और दैहिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए कौन-कौन पदार्थ, किस मात्रा में और कब-कब खाये-पिये जायें। प्रत्युत इसके, जिव्हा की लोलुपता, पेटूपन या विषय भोगों की दृष्टि से ही खान-पान के पदार्थों का चयन किया जाता है—वे पदार्थ कैसे प्राप्त होते हैं, उनका शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। पदार्थों की मात्रा और समय आदि की नियमितता पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य आयुर्वेद-शास्त्रियों, भोजन-शास्त्रियों, नीतिकारों एवं धर्माचार्यों ने भक्ष्याभक्ष्य का विचार विस्तार के साथ किया है। किन्तु जबकि प्रथम दो का उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य का संरक्षण ही है, अन्तिम दो की दृष्टि मानसिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य पर अधिक है। अतएव उसी दृष्टि से वे भक्ष्याभक्ष्य का विचार करते हैं और शुद्ध, सात्त्विक व निर्दोष भोजन-पान का नियमित समय और यथोचित मात्रा में सेवन करने का परामर्श देते हैं।

जैनधर्म सम्मत जीवन नैतिकता एवं सदाचार प्रधान होता है। इसीलिये उसके द्वारा सम्मत भक्ष्याभक्ष्य की मीमांसा प्राणिसंयम एवं इन्द्रियसंयम रूपी द्विविध-संयम के आधार पर की जाती है।

जिन पदार्थों के प्राप्त करने में जीव हिंसा विशेष होती है उनका निषेध है। इसी प्रकार जिनका सेवन इन्द्रियसंयम में बाधक है, वरन् प्रमाद, कषाय, मनोविकार आदि उत्पन्न करता है, उनका भी निषेध है। जहाँ तक मद्य या मदिरा का प्रश्न है, यह दोनों ही प्रकार के संयमों की घातक है।

मद्य, मदिरा, सुरा, वारुणी, कादंबरी आदि अनेक विभिन्न नामों से प्रसिद्ध यह नशीला द्रव, जो चिरकाल से एवं प्रायः सर्वत्र विषय लोलुप व्यक्तियों का प्रिय पेय रहा है, धर्मोपदेष्टाओं एवं मानव समाज हितैषियों की निन्दा का पात्र रहा है। पहले तो इसके उत्पादन में स्थूल त्रस हिंसा होती है, अनेक जीव-जन्तुओं का घात होता है और उनका कलेवर भी उसी में घुल-मिल जाता है। दूसरे, इसका सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, वह उन्मत्त और विवेकशून्य हो जाता है। योग्य-अयोग्य, करणीय-अकरणीय, का विवेक उसे नहीं रहता। इन्द्रियसंयम से तो वह स्खलित हो ही जाता है, इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी निरन्तर भीषण आघात होता रहता है। यह ऐसी भयंकर लत है जो मुँह लगने पर आसानी से छूटती नहीं। इस लत से मनुष्य का आत्मविश्वास, संकल्पशक्ति एवं कार्यक्षमता में भारी ह्रास हो जाता है। यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मों में शराब पीने का निषेध किया गया है। हजरत ईसा ने शराब का निषेध किया, इस्लाम में शराब हराम कही गई, सिक्ख के लिए मद्यपान निषिद्ध है, बौद्ध धर्म में तो यह वर्जित है ही। हिन्दू धर्मशास्त्र मनुस्मृति के अनुसार सुरापान की गणना पंचमहापातकों में है जिसके लिए कठोर दण्ड का विधान है। जैनधर्म में तो प्रत्येक व्यक्ति को सर्वप्रथम जो उपदेश दिया जाता है, वह 'मज्जं-मंसं-वेसा-जूयं-पारद्धि-चोर-परयारं' (मद्य-मांस-वेश्या-द्यूत-शिकार-चोरी-परस्त्री) इन पाप के कारणभूत और दुर्गतियों में ले जाने वाले सात कुव्यसनों के त्याग का होता है। बाईस अभक्ष्य पदार्थों के सूचक पद्य 'मद्यं-मांसं' आदि में भी सर्वप्रथम अभक्ष्य मद्य को ही गिनाया गया है। जैनधर्मानुसार सभी मादक

(नशीले) पदार्थों के सेवन का निषेध है, किन्तु उनमें भी सर्वोपरि स्थान मदिरा को ही दिया जाता है। शराबी व्यक्ति अपने ही लिये नहीं अपितु अपने परिवार, पड़ोसियों, समाज, राष्ट्र तथा पूरी मानव जाति के लिए भी एक अभिशाप बन जाता है। जैन धार्मिक एवं नैतिक साहित्य में मद्यपान के दोषों के निर्देशक अनेक वाक्य प्राप्त होते हैं—

मदिरापान मात्रेण बुद्धिर्नश्यति दूरतः।

×

पापाः कादम्बरीपान विवशी कृत चेतसः।
जननीं हा प्रिप्रीयन्ति जननीयन्ति च प्रियाम्॥

×

मद्यपस्य शवस्येव लुठितस्य चतुष्पथे।
मूत्रयन्ति मुखे श्वानो व्यात्ते विवर शंकया॥

×

वारुणीपानतो यांति कांति-कीर्त्ति-मति-श्रियः।
विचित्राश्चित्र रचना विलुठत्कज्जलादिव॥

वास्तव में, विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया, क्षमा आदि समस्त गुण शराबी व्यक्ति में इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि में तृणपात भस्म हो जाते हैं। इसीलिये इस मदिरापान को जो समस्त दोषों का कारण है—समस्त आपत्ति-विपत्तियों का मूल है, उसी प्रकार दूर से ही छोड़ देना चाहिए जिस प्रकार कि भीषण रोग से पीड़ित मरीज़ अपथ्य (बदपरहेजी) से पूरी तरह बचे—

दोषाणां कारणं मद्यं, मद्यं कारणमापदाम्।
रोगातुर इव अपथ्यं, तस्मान्मद्यं विवर्जयेत्॥

——

सम्पादकीय

पदवियों की मर्यादा का भी ध्यान रखें

पूज्य मुनि श्री सौरभ सागर म० ने दि० १७ सितम्बर, १९९८, को अपने प्रवचन में श्री भा० दि० जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी की तीर्थ जीर्णोद्धार एवं मूर्ति संरक्षण के प्रति समर्पण की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें **इस युग का भरत चक्रवर्ती** कहा और उनसे यह अपेक्षा की कि जिस प्रकार भरत चक्रवर्ती ने ७२ स्वर्ण जिनालयों का निर्माण कराया था, उसी प्रकार सेठी जी को भी ७२ जिनालयों का जीर्णोद्धार महासभा के माध्यम से कराना चाहिए।

श्री सिद्ध क्षेत्र गजपंथा जी पर पूज्य आचार्य श्री रयण सागर म० के द्वारा दी गई जैनेश्वरी दीक्षा के कार्यक्रम के अवसर पर आचार्य श्री ने अपने प्रवचनों में महासभाध्यक्ष श्रेष्ठतम श्रावक श्री सेठी जी को **चक्रवर्ती की उपमा से सम्बोधित किया।** इन प्रवचनों को ध्यान में रखते हुए महाराष्ट्र प्रान्तीय महासभा के अध्यक्ष श्री आर० के० जैन, मुम्बई, ने आचार्य श्री से अनुरोध किया कि सेठी जी को 'श्रावक चक्रवर्ती' पद से सम्मानित किया जाय जिस पर महाराज श्री तथा संघस्थ त्यागियों ने अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त की तथा उपस्थित समाज ने भी महाराज श्री की जयकार बोल कर अनुमोदना की। सेठी जी ने भाव विभोर हो कर इस उपाधि को ग्रहण करने से इन्कार किया लेकिन सभा के आग्रह पर उन्हें उपाधि हेतु आचार्य श्री का आशीर्वाद स्वीकार करना पड़ा।

हम श्री सेठी जी को उपरोक्त पदवियों से अलंकृत किये जाने पर हार्दिक बधाई देते हैं। निश्चय ही आज दिगम्बर जैन समाज के शीर्ष नेताओं में धर्माचरण की अपेक्षा से सेठी जी का सर्वोपरि स्थान है तथा तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार के लिये उनका समर्पण बेजोड़ है। हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

श्री सेठी जी को उपरोक्त पदवियों से अलंकृत किये जाने पर अजमेर से प्रकाशित **स्वतन्त्र जैन चिन्तन** (मासिक) के विद्वान सम्पादक श्री नरेन्द्र कुमार जैन सी०ए० ने पत्रिका के नवम्बर १९९८ के अंक में "**जैन गजट** के सम्पादक श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के नाम एक खुला पत्र" शीर्षक से प्रकाशित आलेख में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा कि किसी सामान्य श्रावक को लाखों लोगों के आराध्य भरत चक्रवर्ती की उपाधि दिया जाना उचित नहीं तथा यदि इस प्रकार की परम्परा विकसित हो गई तो गली-गली में इस उपमा के दावेदार खड़े हो जायेंगे। इस प्रसंग में उन्होंने अपने आलेख में मुनि श्री व सेठी जी पर कुछ व्यंगात्मक कटाक्ष भी किये। **जैन गजट** के विद्वान संपादक जी ने गजट के दि० २४ दिसम्बर, १९९८ के अंक में अपने सम्पादकीय लेख "कृपया अतिरेक से बचें" में उक्त कटाक्ष पूर्ण आक्षेपों की निन्दा करते हुए श्री सेठी जी को इन पदवियों से अलंकृत किये जाने के औचित्य को सिद्ध करने का सशक्त प्रयास किया है। उनके मतानुसार तुलनाएं हमेशा एकांगी होती हैं तथा कोई गुण-विशेष या पक्ष-विशेष ही किसी भी तुलना का आधार हुआ करता है, कोई भी उपाधि किसी के समग्र व्यक्तित्व का द्योतक नहीं होती। उन्होंने व्यंगपूर्ण कटाक्षों पर जो क्षोभ प्रकट किया है उसकी हम भी अनुमोदना करते हैं। ऐसा लेखन शालीनता की सीमा का उल्लंघन करता प्रतीत होता है।

जैन संस्कृति की प्राग्ऐतिहासिक-पौराणिक अवधारणा के अनुसार इस अनन्त काल प्रवाह के १० कोड़ा-कोड़ी सागर वर्ष प्रमाण के एक महाकाल खण्ड में जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में केवल ६३ शलाका पुरुष ही ऐसे महान् पुण्यात्मा इतिहास-पुरुष होते हैं जो अपने असीम एवं अलौकिक पुरुषार्थ से इतिहास रचते हैं, इतिहास जिनके इर्द-गिर्द घूमता है। ये हैं २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण। हमारे वर्तमान के अवसर्पिणी महाकाल खण्ड में तो तीन तीर्थंकरों के चक्रवर्ती भी होने के कारण इन शलाका पुरुषों की संख्या घट कर ६० ही रह गई है।

पुराणकार आचार्यों ने इन्हीं महापुरुषों के जीवन वृत्त स्मरण रखने योग्य बताए हैं, इन्हीं के जीवन से शिक्षा लेकर हम अपना आध्यात्मिक व भौतिक उत्कर्ष कर सकते हैं, अपना जीवन सफल बना सकते हैं। हमारे सारे पुराणशास्त्र इन्हीं महापुरुषों की जीवन गाथा तथा तत्कालीन घटना क्रमों के वर्णन से भरे पड़े हैं।

इन शलाका महापुरुषों में भी २४ तीर्थंकर सर्वाधिक पुण्यात्मा सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम थे जिन्होंने अपने अप्रतिम पुरुषार्थ से ऐसी उत्कृष्ट साधना की कि आत्मा से परमात्मा हो गये तथा जिन्होंने केवलज्ञान की उपलब्धि के उपरान्त धर्म-चक्र का प्रवर्तन कर अपना सम्पूर्ण शेष जीवन प्राणि-मात्र के कल्याण में लगा दिया। तीर्थंकरों के बाद श्रेष्ठता एवं पुण्योदय के क्रम में दूसरा नम्बर पृथ्वीपति चक्रवर्तियों का आता है जिन्होंने अपने अतुलनीय शौर्य से चक्र-रत्न का प्रवर्तन कर भरत क्षेत्र की छहों खण्ड पृथ्वी पर विजय प्राप्त की, सम्पूर्ण देश को सुशासन के एक सूत्र में पिरोया, सार्वभौम प्रजापालक सम्राट बने, असीम ऐश्वर्य, वैभव व सम्पदा के स्वामी हुए।

चक्रवर्तियों में भी प्रथम चक्रवर्ती महाराजा भरत का विशिष्ट स्थान है। उनके विजय अभियान, सुशासन व्यवस्था तथा आदर्श धर्माचरण की गाथा का पुराण शास्त्रों में विशद वर्णन किया गया है। महाराजा भरत श्रावकोत्तम भी थे, असीम ऐश्वर्य के बीच रहते हुए भी पूर्ण विदेह हो गये थे। उनका सम्यक्त्व तथा धर्माचरण इतनी उत्कृष्ट कोटि का था कि जैनेश्वरी दीक्षा की औपचारिकता पूरी होते-होते उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। अतः एक प्रकार से उन्हें गृहस्थावस्था में ही यह सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त हो गई थी। अन्तरंग से तो वे अपरिग्रही थे ही, बाह्य परिग्रह का त्याग करते ही वे पूर्ण वीतरागी अर्हन्त हो गये। गृहस्थावस्था में इतनी उत्कृष्ट साधना किसी तीर्थंकर भगवन्त की भी नहीं रही। जिन मन्दिरों में तीर्थंकरों के अतिरिक्त भरत एवं बाहुबलि स्वामी की ही प्रतिमाओं को स्थान मिला है। अन्य केवलज्ञानियों के तो केवल चरण चिन्ह ही स्थापित किये जाते हैं। भरत-बाहुबलि की

प्रतिमाएं जिन मन्दिरों में स्थापित करके कदाचित् जैन साधना पद्धति के दोनों रूपों—श्रावकाचार के सर्वोत्कृष्ट रूप को तथा साध्वाचार के उग्रतम तप के रूप को समान प्रतिष्ठा यह दर्शाने के लिये प्रदान की गई है कि दोनों ही विधियों से चरम लक्ष्य सिद्ध पद की प्राप्ति सम्भव है।

अब यदि आज किसी को "इस युग का भरत चक्रवर्ती या बाहुबलि" के विरुद से नवाजा जाए और उससे किसी आस्थावान को ऐसा लगे कि हम इन नामों से जुड़े महान् आदर्शों एवं उनकी उपलब्धियों का अवमूल्यन कर रहे हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या? हमने किसी को "इस युग के राम या कृष्ण" के विरुद से नवाजे जाते नहीं सुना। उपमाएं अधिकांशतः एकांगी होती हैं, यह तो ठीक ही है किन्तु यदि इस युग में **समयसार** के अनन्य अध्येता तथा प्रवचनकार हुए अध्यात्म रसिक कानजी स्वामी को उनके भक्त "आज के कुन्दकुन्द" के विरुद से नवाजे तो क्या अन्य इसे सहन करेंगे?

अब से एक सहस्र वर्ष पूर्व दिगम्बर आम्नाय के महान् सिद्धांत ग्रन्थ **षट्खण्डागम** के गहन तलस्पर्शी अध्येता तथा उसके सार रूप संस्कृत भाषा में **गोम्मटसार** महाग्रन्थ की रचना करने वाले आचार्य नेमिचन्द्र को कृतज्ञ चतुर्विध संघ ने **सिद्धान्त चक्रवर्ती** के विरुद से अलंकृत किया था कि जिस प्रकार चक्रवर्ती छह-खण्ड पृथ्वी की विजय करते हैं उसी प्रकार उन आचार्य श्री ने इस महाग्रन्थ के छहों खण्डों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। देखा-देखी हमारे आज के कतिपय महामुनि भी इस पदवी से अलंकृत हो गये। आखिर **षट्खण्डागम** ग्रन्थ पर उनकी पकड़ आ० नेमिचन्द्र से कम तो नहीं! इस सदी में दिगम्बर जैन मुनि धर्म को पुनरुज्जीवित करने वाले आचार्य शांति सागर म० को **चारित्र चक्रवर्ती** के विरुद से नवाजा गया तो हमारे आज के कुछ और आचार्य भी इस पदवी से अलंकृत हो गये। उनकी दृष्टि में कदाचित् उनका श्रमणाचार आ० शांति सागर जी से किसी प्रकार हीन नहीं है। मुनिराज आदि सागर अंकलीकर जी को उनकी परम्परा के मुनि आर्यिकाएं तथा उनके

भक्त **कलिकाल तीर्थंकर** के विरुद से नवाज़ते हैं, एक अन्य आचार्य श्री को भी उनके भक्त **कलिकाल तीर्थंकर** ही मानते हैं। कुछ वर्ष पूर्व एक आचार्य श्री को **कलिकाल सर्वज्ञ** की पदवी से अलंकृत किया गया था। हमारी अल्प बुद्धि में यह इन महान् पदवियों का अवर्ण-वाद है।

"**सिद्धान्त चक्रवर्ती**" कहलाने के वास्तविक अधिकारी तो केवल सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत के ज्ञाता-अध्येता, चौदहों पूर्व धारी, श्रुतकेवली भगवन्त ही थे न कि केवल एक अंग दृष्टिवाद में समाहित १४ पूर्वों में से एक पूर्व (अग्रायणी पूर्व) के एक अधिकार (चयन लब्धि अधिकार) के एक अध्याय (कर्म प्रकृति प्राभृत) की श्रुत के एक-देश ज्ञाता आ० धरसेन से वाचना लेकर उसके आधार पर **षट्-खण्डागम** ग्रन्थ की रचना करने वाले मुनिद्वय या उस ग्रन्थ के गहन अध्येता कोई आचार्य श्री। "**चारित्र चक्रवर्ती**" पदवी को सार्थक करने वाले तो **जम्बू** स्वामी पर्यन्त वे ही महामुनि थे जिन्होंने अपने चारित्र की शुद्धता-पूर्णता को चरम लक्ष्य सिद्ध-पद प्राप्त करके सिद्ध कर दिया। भगवान पार्श्वनाथ तथा भगवान महावीर स्वामी कलियुग में जन्मे तीर्थंकर थे। अन्य किसी महामुनि को "कलिकाल तीर्थंकर" कहना उनका स्पष्ट अवर्णवाद है। अन्तिम "कलिकाल सर्वज्ञ" जम्बू स्वामी थे। अन्य किसी को इन पदवियों से अलंकृत करना जैन संस्कृति की अवधारणाओं से खिलवाड़ करना है।

हम 'श्रावक चक्रवर्ती' पदवी के अर्थ नहीं समझते। वैसे उत्तम श्रावक तो ग्यारह प्रतिमाधारी ही कहलाता है जिसकी पंच-परमेष्ठियों के साथ आरती भी की जाती है तथा, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, श्रावकाचार की पूर्णता तो केवल भरत चक्रवर्ती में ही परिलक्षित हुई थी।

द्वादशांग-श्रुत आगम का सातवां अंग 'उपासक दशांग श्रुत' के नाम से विख्यात है। इसमें भगवान महावीर स्वामी के सम-कालीन उनके दस श्रेष्ठ गृहस्थ उपासकों का वर्णन किया गया है।

(शेष पृष्ठ १७ पर)

योग-परम्परा

—डा० रञ्जन कुमार

भारतीय साधना-क्षेत्र में योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग के आठ प्रसिद्ध अंग हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इनमें दैहिक परिष्कार के साथ चित्त-वृत्तियों की पवित्रता, एकाग्रता एवं निरोध का एक सुव्यवस्थित अभ्यास-क्रम है। प्रायः योग के सम्बन्ध में ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि यह जीवन-शोधन का एक उत्तम मार्ग है। यही कारण है कि वैदिक एवं अवैदिक दोनों ही परम्पराओं में योग पर समान रूप से चिन्तन हुआ है। लेकिन 'योग' शब्द का उपयोग जिस तरह से वैदिक परम्परा में हुआ है ठीक उसी तरह का प्रयोग अवैदिक परम्परा, विशेष रूप से जैन परम्परा, में नहीं हुआ है। जैन परम्परा में प्रारम्भ में 'योग' शब्द कायिक, वाचिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ, परन्तु बाद में जब साधना जगत में चित्त-

---

(पृष्ठ १६ का शेष)

ये सभी अति सम्पन्न यश-ख्याति-प्राप्त पूर्ण धर्म-निष्ठ जैन धर्म में अटूट श्रद्धा रखने वाले सुश्रावक थे जो १२ व्रतों तथा ११ प्रतिमाओं का निरतिचार पालन करते थे तथा जिन्होंने अन्त समय में एक मास की सल्लेखना के साथ समाधिमरण कर स्वर्ग गमन किया और जो वहां से चय कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे तथा सिद्ध पद प्राप्त करेंगे। हम कामना करते हैं कि श्री सेठी जी अपने सुकृत्यों से वैसे ही श्रावकों की पंक्ति में अपना नाम अंकित कराने में सफल हों।

हम अपने पूज्य आचार्यों, मुनिराजों तथा आर्यिका माताओं से भी सविनय निवेदन करना चाहेंगे कि वे अपनी गुरु भक्ति में या सुश्रावकों की प्रशंसा में (प्राचार्य जी के शब्दों में) अतिरेक से बचें तथा प्राचीन महिमामंडित पदवियों की मर्यादा का ध्यान रखें, उनका अवमूल्यन न होने दें।

—अजित प्रसाद जैन

वृत्तियों के परिष्कार, अन्तर्जीवन के सम्मार्जन एवं संशोधन, मन के नियमन आदि अर्थों में योग शब्द का प्रयोग बहुव्याप्त हो गया तब जैन आचार्यों ने भी जैनदर्शन सम्मत अध्यात्म-साधना-क्रम को जैन योग के रूप में एक नया मोड़ प्रदान किया।

वैदिक-परम्परा में योग

ऋग्वेद में 'योग' शब्द का प्रयोग जोड़ने के अर्थ में हुआ है।[1] बाद में यह मानव शरीर एवं इन्द्रिय के साथ संयम के रूप में जुड़ गया।[2] उपनिषद्कालीन ग्रन्थों में योग मानव के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा बनाने के लिये अभ्यास के लिए प्रयोग में आने लगा। **कठोपनिषद्** में योग पूर्णत: आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[3] उपनिषदों में योग शब्द ध्यान, साधना आदि अर्थों के वाचक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है क्योंकि इन सब को आध्यात्मिक स्तर बढ़ाने में सहायक माना जाता है। योग, योगोचित स्थान, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, कुण्डलिनी, विविध प्रकार के मन्त्र, जप और जप-विधि का विवरण, भी उपनिषदों में योग के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने लगा।[4]

धर्मशास्त्रों में भी योग पर व्यापक रूप से चिन्तन हुआ है। **महाभारत** में योग के विभिन्न अंगों पर पर्याप्त चर्चा की गई है। योग सम्बन्धी विवरण हमें **महाभारत** के शांतिपर्व, अनुशासनपर्व, भीष्म-पर्व, द्रोणपर्व आदि में बहुतायत से मिलते हैं। पुराणों में योग के विविध अंग-अंगांगों की चर्चा के साथ-साथ योग प्रतिपादित अष्टांग-योग की व्याख्या अन्य प्रसंगों के साथ हुई है। **भागवत-पुराण** में योग की व्याख्या, योग से कितने तरह की लब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं एवं योग के क्या महत्व हैं, इत्यादि महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर व्यापक रूप से चिन्तन हुआ है,[5] और कहा गया है कि जिसके द्वारा चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर परमात्मा के मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है वही योग है।[6]

गीता में अठारह अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में भिन्न-भिन्न प्रकार के योगों पर चिन्तन हुआ है। सम्भवत: योग के इस

महत्त्वपूर्ण विवेचन के कारण ही **गीता** को 'योगशास्त्र' के रूप में भी जाना जाता है एवं **गीता** के प्रणेता श्रीकृष्ण को महायोगी के नाम से विभूषित किया जाता है। ज्ञान योग[7], भक्ति योग[8], कर्मयोग[9] पर व्यापक चिन्तन के अतिरिक्त **गीता** में अन्य पन्द्रह प्रकार के योगों का भी विवरण उपलब्ध है, यथा—आत्म योग, बुद्धि योग, सातत्य योग नित्य योग, अभ्यास योग, ब्रह्म योग, दैव योग, शरणागति योग, यज्ञ योग, सन्यास योग, आदि।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित **योगदर्शन** का षड्दर्शनों में एक प्रमुख स्थान है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ **योगदर्शन** में योग से सम्बन्धित सभी तरह की मान्यताओं का उल्लेख मिलता है। उन्होंने योग को समाधि रूप माना है और चित्तवृत्ति निरोध उसका लक्षण बताया है।[10] सारांशतः चित्त की जिस अवस्था विशेष में प्रमाण विपर्ययादि वृत्तियों का निरोध होता है उस अवस्था विशेष का नाम ही योग है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ने भी यम, नियम आदि पर काफी बल दिया है।[11] **ब्रह्मसूत्र** के तीसरे अध्याय में आसन, ध्यान आदि योग के अंगों का वर्णन मिलता है।[12] चूंकि ये सब समग्र योग की प्राप्ति में साधन का काम करते हैं, अतः इस अध्याय को साधनपाद के नाम से भी जाना जाता है। सांख्यदर्शन में भी योग विषयक अनेक सूत्र मिलते हैं।[13] सांख्य दर्शन की योग के सम्बन्ध में अपनी अलग मान्यता है। वह सम्पूर्ण विश्व को प्रकृति के द्वारा निर्मित मानता है और प्रकृति सत्व-रजस-तमस नामक तीन गुणों का सम्मिलित रूप है। जब यह सम्पूर्ण विश्व त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम है तो चित्त को भी सत्व-रजस-तमस त्रिगुणात्मक रूप में ही अभिव्यक्त माना जा सकता है। लेकिन सांख्याचार्य यह भी मानते हैं कि चित्त में अन्य प्रकृति परिणामों की अपेक्षा सत्त्व गुण का उदय अधिक होता है। इस प्रकार सत्त्वादि गुणों की न्यूनता-अधिकता से चित्त की उच्चावच्च अनेक अवस्थाएँ होती हैं। चित्त की इन अवस्था-विशेष को भूमिका के नाम से निर्देशित किया गया है। ये भूमिकाएँ पाँच

प्रकार की होती हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, समग्र और निरुद्ध।[14] क्षिप्त अवस्था में रजोगुण की मात्रा अधिक होती है जिससे मन अत्यधिक चंचल होता है। मूढ़ अवस्था में तमोगुण की प्रधानता होने के कारण चित्त सदा विवेकशून्य रहता है। विक्षिप्त अवस्था में सत्व की अधिकता रहती है, लेकिन रजः प्रधान क्षिप्त अवस्था की अपेक्षा चित्त कभी तो स्थिर होता है परन्तु वह फिर चंचल हो उठता है। समग्र एवं निरुद्ध अवस्था में मन स्थिर होता है तथा यह समाधि की अवस्था के लिए उपयुक्त माना जाता है। इन दो अवस्थाओं में चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, और सम्भवतः पातंजल योग दर्शन में 'चित्त वृति निरोधः योगश्च' का अभिप्राय भी यही रहा हो।

बौद्ध परम्परा में योग

बौद्ध-दर्शन अवैदिक दर्शन है और श्रमण परम्परा के दर्शन में इसे रखा गया है। भगवान बुद्ध को इस दर्शन के प्रणेता के रूप में ख्याति प्राप्त है। वे आत्मा, चेतना आदि को क्षणिक मानते थे, परन्तु उन्होंने ध्यान, समाधि आदि पर भी पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला है। बौद्ध परम्परा में दीर्घ और कठोर साधना-पद्धति पर अत्यधिक बल नहीं दिया गया है, परन्तु यहाँ आहार, शील, प्रज्ञा, ध्यान आदि के रूप में योग-साधना का वर्णन हुआ है। वर्तमान समय में बौद्ध योग के रूप में 'विपश्यना' ध्यान पद्धति काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय है। यह विश्वास किया जाता है कि बोधि प्राप्त करने के पूर्व तथागत बुद्ध ने श्वासोच्छ्वास निरोध का प्रयास किया था। श्वासोच्छ्वास - निरोध प्राणायाम के रूप में जाना जाता है और प्राणायाम योग का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है। **अंगुत्तर निकाय** में बुद्ध और उनके शिष्य अग्गिवसेन के बीच श्वासोच्छ्वास-निरोध के सम्बन्ध में वार्तालाप का उल्लेख है।[15] तथागत बुद्ध ने अपने अष्टांगिक मार्ग में समाधि को विशेष महत्त्व दिया। समाधि तक पहुंचने के लिए सात अंगों का वर्णन हुआ है जिनमें ध्यान को आवश्यक माना गया है।[16] पूर्ण समाधि की प्राप्ति के लिए तर्क-वितर्क-प्रीति-

सुख-एकाग्रता सहित, प्रीति-सुख-एकाग्रता सहित, सुख-एकाग्रता सहित और एकाग्रता सहित, ध्यान का उल्लेख मिलता है।[17]

किसी आलम्बन को स्वीकार करके समाधि के विषय में चित्त के प्रवेश को वितर्क कहते हैं और उस विषय में गहरे उतरने को विचार कहते हैं। गहरे उतरने से तात्पर्य विषय वस्तु के सम्बन्ध में ज्यादा चिन्तन करना, अधिक अन्वेषण करना आदि है। इससे जो आनन्द का अनुभव होता है, वह प्रीति कहलाता है। उस आनन्द से शरीर को जो समाधान मिलता है वह सुख है और उस विषय में चित्त की जो एकाग्रता होती है वही एकाग्रता के नाम से जाना जाता है। जब विषय को भली भाँति समझ लिया जाता है तब उससे उत्पन्न होने वाली निर्भयता को उपेक्षा कहते हैं। इस प्रक्रिया में साधक ज्यों-ज्यों विकास की ओर बढ़ता है उसे वितर्क, विचार, प्रीति और सुख किसी के चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती और यही अवस्था ध्यान की चरमावस्था है। बौद्धों का यह विश्वास है कि समाधि की प्राप्ति संयम के द्वारा ही सम्भव है, इसीलिये वह संयमित और सदाचारी रहना ज्यादा पसन्द करते हैं क्योंकि चित्त-वृत्ति को पूर्ण शांति एवं एकाग्रता तभी प्राप्त की जा सकती है।

जैन परम्परा में योग

जैन परम्परा में 'योग' शब्द कई सन्दर्भों में प्रयुक्त हुआ है—संयम, निर्जरा, संवर आदि। परन्तु जैनागमों में योग शब्द का उल्लेख प्रायः मन, वचन एवं काय के व्यापार के अर्थ में हुआ है,[18] अर्थात् मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया ही योग है। यह कर्म-बन्ध में हेतुभूत होने से आस्रव भी कहलाता है। आस्रव का अर्थ होता है आगमन और इन त्रिविध व्यापारों से कर्मों का आगमन आत्मा की तरफ होता है। अप्रशस्त योग पाप-बन्ध का और प्रशस्त योग पुण्य-बन्ध का कारण माना गया है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग (मन, वचन, काया के व्यापार) आस्रव द्वार या कर्मबन्ध के हेतु माने गये हैं।[19] कर्म योग्य पुद्गलों अर्थात् कर्मरूप में परिणत होने वाले अणुओं का आत्म-प्रदेशों के साथ सम्बन्ध

होना बन्ध है और उसमें मन-वचन-काय के योग सम्बन्ध की नितांत आवश्यकता रहती है क्योंकि आत्मा की शुभाशुभ प्रत्येक प्रवृत्ति में इन्हीं तीनों (मन, वाणी, शरीर) का किसी-न-किसी प्रकार से सम्बन्ध रहता है।

उत्तराध्ययनसूत्र में 'योग' के लिये 'योगवान्' शब्द का प्रयोग किया गया है,[20] और 'योग' का अर्थ 'संयम' के रूप में उद्भासित हुआ है कि जिस प्रकार वाहन को वहन करते हुये बैल अरण्य को पार कर जाता है ठीक उसी तरह से योग को वहन करते हुए मुनि संसार रूपी अरण्य को पार कर जाते हैं।[21] **सूत्रकृतांग** में भी 'योग' के लिये 'जोगवं' शब्द आया है जिसका अर्थ विद्वानों ने संयम किया है।[22] आचार्य पूज्यपाद ने योग, समाधि और सम्यक् प्राणिधान को एकार्थ-वाची माना है।[23] आचार्य अकलंक ने समाधि और ध्यान को ही योग माना है।[24] इस तरह से हम देखते हैं कि जैन परम्परा में 'योग' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ—प्रथमतः मन-वचन-काय की प्रवृत्ति के अर्थ में जो बन्ध का मूल कारण माना जाता है, और दूसरे, संयम, ध्यान, समाधि के रूप में जब योग बन्धन का कारण नहीं बनता है बल्कि बन्धन को तोड़ने वाला होता है।

इस प्रकार, जैन-परम्परा में 'योग' बन्धन के कारण एवं बन्धन के विच्छेदक इन दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। बन्धन के विच्छेदक के रूप में योग की अवधारणा को प्रस्तुत करने में आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य शुभचन्द्र जैसे कई विद्वान जैनाचार्य हुये जिन्होंने योग के क्षेत्र में नवीन मापदण्ड स्थापित किये। आचार्य हरिभद्रसूरि की योग के सम्बन्ध में क्या मान्यता थी यहाँ हम इसी पर संक्षिप्त रूप से विचार करेंगे, क्योंकि इन्होंने आगमों के आधार पर योग की जो व्याख्या और विषय विभाग तथा जिस विशिष्ट पद्धति का अनुसरण किया है वह दार्शनिक जगत् में नितांत नई वस्तु है। इन्होंने योग विषयक आगमों की प्राचीन वर्णन-शैली को तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार दार्शनिक रूप में परिवर्तित कर लोगों के समक्ष जिस रूप में प्रस्तुत किया वह उनकी

दार्शनिक विलक्षणता का ही परिणाम है। **योगदृष्टि समुच्चय, योग-विंशिका, योगबिन्दु** आदि में उन्होंने योग का एक नया एवं अद्भुत रूप प्रस्तुत किया है और पातंजल-योग में वर्णित संप्रज्ञात एवं असंप्रज्ञात योग को अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता और वृत्तिसंक्षय आदि पांच वर्गों में वर्गीकृत करके योग के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का सूत्रपात किया।[25]

मोक्षाभिलाषी आत्मा को अध्यात्मयोगी कहा गया है।[26] योग का मुख्य ध्येय मोक्ष-प्राप्ति है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक है और प्रयत्न का प्रारम्भ अभिलाषा या चाहना पर निर्भर करता है। इसीलिए आचार्य हरिभद्र ने अपने योग का प्रारम्भ अध्यात्म-योग से किया। चारित्र शुद्धि के लिए अध्यात्म योग के अनुष्ठान की मुमुक्ष आत्मा को नितान्त आवश्यकता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिये ज्ञान, दर्शन के साथ-साथ चारित्र-शुद्धि पर भी समान रूप से बल दिया गया है। मोक्ष इन तीनों की सम्यक् साधना से ही प्राप्त हो सकता है। एक के भी अभाव में मोक्ष-प्राप्ति सम्भव नहीं है। **योग-बिन्दु** में लिखा है कि उचित प्रवृत्ति से अणुव्रत-महाव्रत से युक्त होकर मैत्री आदि चार भावनापूर्वक शिष्टवचनानुसार आगमानुसार चिन्तन करना चाहिए क्योंकि इस तरह का चिन्तन ही अध्यात्म-योग है।[27]

अध्यात्मयोग के अभ्यास से जो अध्यात्म तत्त्व की प्राप्ति होती है उसका विचार पूर्वक निरन्तर अभ्यास, मनन, चिन्तन करना भावना योग है।[28] इसे अनुप्रेक्षा के नाम से भी जाना जाता है। बारह प्रकार की भावनाएँ मानी गई हैं। भावनायोग की महत्ता पर विचार करते हुए आचार्य शिवार्य कहते हैं कि धर्मध्यान में जो प्रवृत्ति करता है उसके लिए ये बारह भावनायोग (अनुप्रेक्षाएँ) आधार रूप हैं। भावनायोग के बल पर ध्याता धर्म-ध्यान में स्थिर रहता है; जो जिस वस्तु स्वरूप में एकाग्र चित्त होता है वह विस्मरण होने पर उससे चिगता है, परन्तु बार-बार उसको एकाग्रता के लिये आलम्बन मिल जाएगा तो वह नहीं चिगेगा।[29] अतः एकाग्रता प्राप्ति के लिये

भावनायोग अत्यन्त आवश्यक है और बिना एकाग्र हुए समाधि की अवस्था भी नहीं पाई जा सकती है। एकाग्रता के लिए आलम्बन या आधार की आवश्यकता पड़ती है। भावनायोग में इस समस्या का समाधान बड़े ही व्यवस्थित रूप में किया गया है। कारण, यहाँ बारह प्रकार की विषय वस्तु मिलती है और साधक का ध्यान जब एक विषय से हटता है तो उसी क्षण उसके समक्ष दूसरा विषय प्रस्तुत हो जाता है। इस तरह से वह भटक नहीं पाता है और शनैः-शनैः पूर्ण एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है।

ध्यान योग में साधक की एकाग्रता बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किया जाता है। इस योग में ध्येय वस्तु विषयक एकाग्रता इतनी बढ़ जाती है कि साधक को उस समग्र ध्येय के अतिरिक्त अन्य का आंशिक विचार भी नहीं उत्पन्न होता है। यह ध्यानरूप योगाग्नि जिस आत्मा में प्रज्ज्वलित होती है उसका कर्म-रूप मल भस्म हो जाता है।[30] इससे जो प्रकाश उत्पन्न होता है उससे व्यक्ति के मन में उत्पन्न होने वाले रागादि का अन्धकार दूर हो जाता है, चित्त सर्वथा निर्मल हो जाता है और मोक्षमन्दिर का द्वार सामने दिखाई पड़ने लगता है।

समतायोग को ध्यान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अविद्याकल्पित इष्टानिष्ट पदार्थों में विवेकपूर्वक तत्त्वनिर्णय बुद्धि से राग-द्वेषरहित होना अर्थात् पदार्थों में की जाने वाली इष्टत्व-अनिष्टत्व कल्पना को केवल अविद्याप्रभव समझ कर उनमें उपेक्षा धारण करना, समता कहलाता है।[31] उसमें निविष्ट मन, वचन, काया के व्यापार का नाम समता योग है। अविद्या अथवा मोह के वशीभूत हुआ यह जीव अमुक वस्तु को इष्ट और अमुक वस्तु को अनिष्ट मानकर इष्ट वस्तु में राग और अनिष्ट वस्तु में द्वेष करने लगता है। सौभाग्यवश जब उसमें विवेक-ज्ञान का उदय होता है तब वह इष्ट और अनिष्ट के मर्म को समझ पाता है। वस्तु में इष्टानिष्टत्व की भावना तो अविद्या कल्पित है। इस अविद्या के सम्पर्क से ही आत्मा में पदार्थों के इष्टानिष्टत्व की कल्पना द्वारा

हर्ष-शोकरूप विभाव-संस्कारों का उदय होता है जिसके कारण आत्मा स्वयं को सुखी या दुःखी मानती है। वस्तुतः ये संस्कार न तो आत्मा के गुण हैं और न ही इनका उससे कोई वास्तविक सम्बन्ध है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप तो 'सत्', 'चित्', 'आनन्द','दर्शन', 'ज्ञान' और 'चारित्र' है। यहाँ सत् दर्शन, चित् ज्ञान और आनन्द चारित्र के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के विवेक ज्ञान के उदय से आत्मा में विचार वैषम्य का लय तथा समभाव का परिणमन होने लगता है। इस सत् परिणाम द्वारा किये जाने वाले चिन्तन को समतायोग कहते हैं।

आत्मा में मन और शरीर के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाली विकल्परूप तथा चेष्टारूप वृत्तियों का अपुनर्भाव रूप से जो निरोध, आत्यन्तिक क्षय व समूलनाश होता है, उसी का नाम वृत्तिसंक्षय योग है।[32] आत्मा स्वभाव से निस्तरंग महान् समुद्र के समान निश्चल है। जैसे वायु के सम्पर्क से समुद्र में तरंगें उठती हैं, उसी तरह से मन और शरीर के संयोगरूप वायु से आत्मा में संकल्प-विकल्प और परिस्पन्दन चेष्टारूप नाना प्रकार की वृत्ति रूप तरंगें उठने लगती हैं। इनमें विकल्परूप वृत्तियों का उदय मनोद्रव्यसंयोग से होता है और चेष्टारूप वृत्तियाँ शरीर सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं। इन विकल्प और चेष्टारूप वृत्तियों का समूल नाश ही वृत्तिसंक्षय है।

सन्दर्भ :

१. स धा नो योग आ भुवत्।–ऋग्वेद, १/५/३

२. Dr. S.N. Das Gupta : Philosophical Essays, p. 179

३. अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो-हर्ष-शोकौ जहाति।
–कठोपनिषद्, १/२/१२

४. जैन योग सिद्धांत और साधना, पृ० १३

५. भागवत् महापुराण, ३/३३-३८, ११/१५, १६, २०

६. योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम्॥ वही, १/८/१

७. गीता, ३/३, १३/२४ ८. वही, १४/२६ ९. वही, ५/७

१०. योगः समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः।
योगश्चितवृत्तिनिरोधः।

११. अभिषेचनोपवास-ब्रह्मचर्य-गुरुकुलवास वानप्रस्थ-यज्ञदान-दिङ् नक्षत्र-मंत्र-काल-नियमाश्चदृष्टाय ।-**वैशेषिक दर्शन**, ६/२/२ एवं ६/२/८

१२. **ब्रह्मसूत्र**, ४/१/७–११ १३. **सांख्यसूत्र**, ३०–३४

१४. क्षिप्त मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरूद्धमिति चित्तस्य भूमय: ।-**व्यासभाष्य**, पृ. १

१५. **अगंत्तुर निकाय**, ६३

१६. **बुद्धलीलासार संग्रह**, पृ० १२८; **समाधिमार्ग** (धर्मानंद कोसम्बी), पृ. १५

१७. **संयुक्तनिकाय**, ५.१०

१८. तिविहे जोए पण्णत्ते तंजहा-मणजोए, वइजोए काइजोए ।-**ठाणांग**, स्थान-३

१९. पंच आसव दारा पण्णत्ता तंजहा-मिच्छत्तं अविरइ पमाया कसाया जोगा ।
—**समवायांगसूत्र**, समवाय-५

२०. जोगव उवहाणं । —**उत्तराध्ययन सूत्र**, ११/२०

२१. वहणं वहमाणस्स कंतारं अइवत्तई ।
जोए वहमाणस्स संसारो अइवत्तई ।। वही, २७/२

२२. जययं विहराहि जोगवं अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा ।
अणुसासणमेव पक्कमे वीरेहिं सम्मं पवेदियं ।।—**सूत्रकृतांग**, १/२/१/११

२३. योग: समाधि: सम्यक्प्राणिधानमित्यर्थ: ।—**सर्वार्थसिद्धि**, ६/१२/३३१/३

२४. युजे: समाधिवचनस्य योग: समाधि: ध्यानमित्यनर्थान्तरम् ।
—**राजवार्तिकम्**, ६/१/१२/५०५/२७

२५. अध्यात्मं भावना ध्यानं समता वृत्तिसंक्षय: ।
मोक्षेण योजनाद्योग: एष श्रेष्ठो यथोत्तरम् ।।—**योगबिन्दु**, ३१

२६. अज्झप्पजोगसुद्धादाणे उवदिट्ठिय ठिअप्पा ।-**सूत्रकृतांग**, १६/३

२७. औचित्याद्वृत्तयुक्तस्य वचनातत्त्व चिन्तनम् ।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तमध्यात्मं तद्विदो विदु: ।।—**योगबिन्दु**, ३५७

२८. अभ्यासोबुद्धिमानस्य भावना बुद्धिसंगत: ।—**योग भे० ज्ञा० ९**

२९. इय आलंबणपेहाओ धमस्स होंति उज्झाणस्स ।
उज्झायंताणविणस्सदि उज्झाणे आलंबणेहिं मुणी ।।
—**भगवती आराधना**, १८७४

३०. सज्झायसुज्झाणरयस्स ताइणो अपाव भावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झइ जंसि मलं पुरे कडं समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ।
—**दशवैकालिक**, ८/६३

३१: सव्वं जगं तु समयाणुपेही पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ।।
—**सूत्रकृतांग**, १०/७

३२. अन्यसंयोगवृत्तीनां यो निरोधस्तथा तथा ।
अपुनर्भावरुपेण स तु तत्संक्षयो मत: ।।—**योगबिन्दु**, ३६६ ★

भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट चातुर्याम धर्म

—डॉ० (श्रीमती) जैनमती जैन

ईसा पूर्व नवमी शताब्दी में जैन धर्म के २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था। उस समय धार्मिक वातावरण विषम था और चिन्तन की दो विपरीत धारायें प्रवाहित हो रही थीं। एक ओर ऐसे लोगों की जमात थी जो स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे और वे अपने विश्वासानुसार असंख्य पशुओं का यज्ञों में होम किया करते थे। दूसरी ओर, ऐसे स्वतन्त्र चिन्तक भी थे जो मौन रह कर तत्त्वों का मनन निर्बाध रूप से किया करते थे और इसी कारण वे मुनि कहलाते थे। तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य इनके जीवन के परम मूल्य थे और इनकी साधना का लक्ष्य मोक्ष या शाश्वत सुख प्राप्त करना था। इस साध्य की सिद्धि में यज्ञ आदि निरर्थक या अनुपयोगी थे।

भगवान पार्श्वनाथ ने पशु यज्ञों का विरोध किया और परम सुख की प्राप्ति के लिए 'चातुर्याम धर्म' (चाउज्जाम धम्म) का उपदेश दिया। 'चातुर्याम' का अर्थ है चार यामों का समूह। 'याम' शब्द 'यम' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बना है और इसका अर्थ है—नियन्त्रण, निषेध, संयम, निग्रह। यम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है 'यच्छति नियच्छति इन्द्रियग्राममनेनेति यमः', अर्थात् इन्द्रियों और मन का नियन्त्रण जिसके द्वारा होता है वह यम कहलाता है। तदनुसार **हलायुध शब्दकोश** में यम का अर्थ संयम किया गया है।

याम शब्द का अर्थ सुनिश्चित होने के पश्चात् यह जानना जरूरी है कि यम या याम के कितने भेद हैं। जैनेतर भारतीय संस्कृति में यमों की संख्या दस तक बतलाई गई है, जैसे कि **याज्ञवल्कीय स्मृति**, ३/३१३, में उल्लेख है—

ब्रह्मचर्यदयाक्षान्तिर्दानं सत्यमकल्पता।
अहिंसाऽस्तेय माधुर्ये दमश्चेतियमाः स्मृताः॥

अथवा अन्यत्र भी—

अनुरास्यं दयासत्यमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमा दश॥

योग दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह प्रभृति पाँच यम बतलाये गये हैं।

जैन धर्म की दिगम्बर आम्नाय में 'चातुर्याम' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं है। श्वेताम्बर परम्परा में **स्थानांग** और **उत्तराध्ययन** आदि अर्धमागधी आगमों में 'चातुर्याम धर्म' की विस्तार से विवेचना उपलब्ध है। **स्थानांग** (चतुर्थ स्थान, प्रथम उद्देशक, सूत्र १३६-३७) में कहा गया है—

भरहेरावएसु ण वासेसु पुरिमपच्छिमवज्जा मज्झिमगा वावी सं अरहंता भगवंत चाउज्जामं धम्मं पन्नविंति। तं जहा सव्वाओ पाणाहवायाओ वेरमणं, एवं मुसावायाओ, अदिन्नादाणाओ, सव्वाओ बहिद्धा दाणाओ वेरमणं।

अर्थात्, भरत और ऐरावत में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोड़ कर शेष बाईस तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उपदेशक दो प्रकार के होने के कारण धर्म दो प्रकार का है। पहला धर्म अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य है जिसका उपदेश प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ने दिया था। दूसरा धर्म वह है जिसका उपदेश शेष बाईस तीर्थंकरों ने दिया और जिसके अनुसार सर्व प्राणातिपात विरति, सर्वमृषावाद विरति, सर्वअदत्तादान विरति और सर्व बहिर्धाआदान विरति, चार याम हैं। सर्व प्राणातिपात का अर्थ समस्त जीवों की हिंसा है, सर्वमृषा-वाद का अर्थ समस्त असत्य है, सर्व अदत्तावान का अर्थ सभी प्रकार की आदेय वस्तु अर्थात् स्तेय है, और सर्वबहिर्धाआदान का अर्थ समस्त वाह्य वस्तु अर्थात् परिग्रह है। अतः सम्पूर्ण हिंसा, असत्य, चोरी और परिग्रह से वेरमण अर्थात् विरत होना या इनका त्याग करना चातुर्याम है। क्योंकि हिंसा आदि चारों यम के समान दुखःदायी हैं, इसलिए जिस धर्म में इन कुत्सित प्रवृत्तियों से निवृत होने का उपदेश दिया गया है, वह चातुर्याम धर्म कहलाता है। व्रतों से भी उक्त अशुभ प्रवृत्ति की निवृति होती है, अतः चातुर्याम से तात्पर्य चार महाव्रतों से भी है।

अभिधान राजेन्द्र कोश (भाग ३, पृ० ११६८) में यह भी कहा है—"चतुर्णं परिग्रह विरत्यन्तर्भूत ब्रह्मचर्यत्वेन चतुसंख्यांनां यामानां समाहारश्चातुर्यामम्", अर्थात्, परिग्रहविरति में ब्रह्मचर्य का अन्तर्भाव हो जाने से चार यामों का समूह चातुर्याम है।

यहां जिज्ञासा होती है कि जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने और अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने पाँच यमों या व्रतों का उपदेश दिया तो पार्श्वनाथ भगवान ने चातुर्याम धर्म का उपदेश क्यों दिया? इस प्रश्न का समाधान **उत्तराध्ययनसूत्र** के २३वें अध्याय में 'केशी गौतम संवाद' में उपलब्ध है। केशी कुमार श्रमण पार्श्वनाथ के महायशस्वी शिष्य थे। भगवान महावीर के महायशस्वी शिष्य इन्द्रभूति गौतम ने केशी को बतलाया कि उक्त दो प्रकार की धर्म देशना का कारण साधु-संघ की बुद्धि है। प्राचीन काल अर्थात् प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु (सरल) और जड़ अर्थात् मन्द बुद्धि के थे। ये साधु धर्म के उपदेशों को सरलता से ग्रहण तो कर लेते थे, लेकिन बुद्धि जड़ होने के कारण उनका शुद्ध रूप से पालन कठिनता से कर पाते थे। अन्तिम तीर्थंकर महावीर के समय के साधु वक्र औरजड़ बुद्धि के थे। वक्र बुद्धि के कारण वे वाद-विवाद और विकल्प जाल में फंस जाते थे, और यद्यपि महावीर के उपदेशों को ऊहापोह से समझ तो लेते थे, लेकिन जड़ बुद्धि होने के कारण उनका पालन निर्दोष रूप से नहीं कर पाते थे। यही कारण है कि प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों ने पाँच महाव्रत रूप धर्म का उपदेश दिया था। २२ तीर्थंकरों के साधु सरल और प्रज्ञावान होने के कारण साधु-धर्म को सरलता से समझ लेते थे और बुद्धि पूर्वक निर्दोष पालन भी किया करते थे। —

पुरिमा उज्जुजडा उ वंकजडा य पश्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना य तेण धम्मे दुहा कए॥
पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उचरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु सु विसोज्झो सुपालओ॥

—**उत्तराध्ययन सूत्र**, अध्ययन २३, गाथा २६२७

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि तीर्थंकरों ने शिष्यों की बुद्धि के अनुसार उपदेश दिये थे। भगवान पार्श्वनाथ ने अपने साधुओं की बुद्धि को जान कर चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया था। इनके शिष्य 'बहिद्धा' का अर्थ स्त्री के प्रति आसक्ति एवं वासना को आंतरिक परिग्रह समझ कर बाह्य परिग्रह की तरह उसका भी त्याग करते थे, अतएव उन्होंने ब्रह्मचर्य का उपदेश देना आवश्यक नहीं माना।

चातुर्याम धर्म की व्याख्या के प्रसंग में यह जिज्ञासा होती है कि 'बहिद्धाआदाण विरमण' नामक याम में ब्रह्मचर्य महाव्रत का अन्तर्भाव किया गया है या नहीं। इसका समाधान वर्तमान कालीन अंग और उपांग साहित्य में अनुपलब्ध है। टीकाओं में, विशेष कर **उत्तराध्ययन** की टीका में शान्त्याचार्य ने यह माना है कि ब्रह्मचर्य व्रत का अन्तर्भाव 'बहिद्धाआदाण विरमण' में हुआ है, और इसी कारण उन्होंने चातुर्याम धर्म को ब्रह्मचर्यात्मक पाँचवें महाव्रत सहित कहा है। (देखें, प्रफुल्ल कुमार मोदी : **पासनाह चरिउ**, प्रस्तावना, पृ० ४७; और **अभिधान राजेन्द्र कोश**, ३, पृ० ११६८)।

टीकाकार का उक्त कथन यदि सत्य है, तो यह मानना पड़ेगा कि भगवान ऋषभदेव द्वारा उपदिष्ट पाँच शिक्षा रूप धर्म को संकुचित कर अजित नाथ से पार्श्वनाथ पर्यन्त तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया और पुनः भगवान महावीर ने भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट चातुर्याम धर्म का विस्तार कर पंचयाम (पांच महाव्रतों) का उपदेश दिया। लेकिन ऐसा मानना उचित नहीं है, क्योंकि यह **उत्तराध्ययन** के कथन से मेल नहीं खाता है। **उत्तराध्ययन** (गाथा २३/८७) में कहा गया है कि पार्श्वनाथ के शिष्य केशी कुमार ने पाँच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार किया था और यह भी कि उन्होंने चतुर्थ याम का विभाजन कर पंचयाम धर्म माना था। इससे सिद्ध होता है कि चौथे याम में ब्रह्मचर्य महाव्रत समाविष्ट नहीं है।

अब यह विचारणीय है कि शौरसेनी साहित्य में चातुर्याम सूचक शब्दों का प्रयोग हुआ है या नहीं। वट्टकेर के **मूलाचार**

(अधिकार ७, गाथा २९-३३) में 'सामायिक संयम' का प्रयोग उसी अर्थ में हुआ है जिस अर्थ में 'चातुर्याम धर्म' का प्रयोग श्वेताम्बर आगमों में हुआ है। यहाँ कहा गया है कि पहले और अन्तिम तीर्थंकर 'छेदोपस्थापना संयम' का उपदेश देते हैं और अजितनाथ से पार्श्वनाथ पर्यन्त तीर्थंकर 'सामायिक संयम' का उपदेश देते हैं। इसका कारण भी वही है जो **उत्तराध्ययन सूत्र** में बतलाया गया है, अर्थात् प्रथम तीर्थंकर के शिष्य ऋजु स्वभाव के थे इसलिए उन्हें कठिनाई से निर्मल किया जा सकता था और अन्तिम तीर्थंकर के शिष्य वक्र स्वभाव के थे इसलिए बहुत कठिनाई से उन्हें सही मार्ग पर लगाया जा सकता था। पूर्ववर्ती और पश्चातवर्ती तीर्थंकरों के शिष्य कल्प (उचित) और अकल्प (अनुचित) को भी स्पष्ट रूप से नही जानते थे। महाव्रतों को समझना, समझाना, विभाग और विश्लेषण करना सरल होता है, इसलिये भी उन दोनों तीर्थंकरों ने छेदोपस्थापना संयम का उपदेश दिया था। **वट्टकेर** ने **मूलाचार** में सावद्य योग के त्याग करने को 'सामायिक' कहा है। **तत्त्वार्थ सूत्र** के टीकाकार पूज्यपाद ने **सर्वार्थसिद्धि** (७/१) में कहा है कि समस्त पापों से निवृत्ति स्वरूप सामायिक की अपेक्षा से जो एक व्रत है, वही छेदोपस्थापना की अपेक्षा से पाँच प्रकार का है (सर्वसावद्य निवृत्ति लक्षण सामायिकापेक्षया एकं व्रतं तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पञ्च विधमिहोच्यते)। सामायिक संयम के विभाजन को छेदोपस्थापना कहते हैं। वसुनन्दि ने **मूलाचार** पर अपनी टीका में इसका अर्थ पाँच महाव्रत किया है।

श्वेताम्बर परम्परा में भी सामायिक और छेदोपस्थापना संयम का अर्थ इसी प्रकार सुनिश्चित किया गया है। **स्थानांग सूत्र** की **व्याख्या प्रज्ञप्ति** में कहा गया है कि सामायिक करने से चातुर्याम धर्म का पालन होता है और सामायिक का विभाजन कर पाँच यमों में स्थित होना छेदोपस्थापक है। (देखें, **पासणाह चरिउ**, प्रस्तावना, पृ० ४८)।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि **मूलाचार** में जिसे 'सामायिक' कहा गया है, उसी को **स्थानांग व्याख्या प्रज्ञप्ति** आदि

में चातुर्याम कहा गया है और मूलाचार में जिसे 'छेदोपस्थापना संयम' कहा गया है उसी को उत्तराध्ययन में 'पंचसिक्खियो' नामक धर्म या 'पंचयाम' भी कहा गया है। अतः कहा जा सकता है कि भगवान पार्श्वनाथ ने सामायिक धर्म का उपदेश दिया था, जिसका पालन भगवान महावीर के माता-पिता भी करते थे, और उसी सामायिक चारित्र को स्वीकार कर भगवान महावीर ने दीक्षा ली थी। ★

(पृष्ठ ८ का शेष)

में मूलसंघान्तर्गत नन्दिगण के प्रभेदरूप देशी-गण के गोल्लाचार्य के शिष्य एक अविद्धकरण कौमारव्रती पद्मनन्दि सैद्धांतिक का उल्लेख मिलता है जिनके शिष्य सिद्धांत-सागर में पारंगत कुलभूषण नामक यति और शब्दाम्भोरुहभास्कर एवं प्रथिततर्कग्रन्थकार श्रीकुण्ड-कुन्दान्वय के मुनिराज पण्डितवर प्रभाचन्द्र बताये गये हैं। उक्त शिलालेख में आगे कुलभूषण मुनि की शिष्य परम्परा आदि का उल्लेख है।

ऐसा प्रतीत होता है कि **शब्दाम्भोजभास्कर** तथा प्रख्यात तर्क ग्रन्थों (**प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** और **न्यायकुमुदचन्द्र**) के कर्ता के रूप में विख्यात प्रभाचन्द्र मूलतः दक्षिण भारत के थे और वहीं उक्त पद्म-नन्दि सैद्धांतिक के शिष्य बने, किन्तु कालान्तर में उत्तर की ओर विहार कर धारा नगरी में जा बसे जहाँ न्याय ग्रन्थ **परीक्षामुख** के कर्ता माणिक्यनन्दि के सम्पर्क में आये और उन्हें भी अपना गुरुवत माना। उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना धारा नरेश भोजराज एवं श्रीजयसिंहदेव के राज्यकाल में की थी। उपर्युक्त कृतियों में से कई में रचनाकार द्वारा अपने नाम के पूर्व **पण्डित** विशेषण का प्रयोग करने से ऐसा भासित होता है कि कदाचित् वह एक गृहस्थ विद्वान, कम से कम उन रचनाओं के समय तक, रहे। धारानरेश भोजराज द्वारा पूजित तो वह बताये ही गये हैं। सम्भव है पण्डित प्रभाचन्द्र ने कालांतर में मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली हो और जिन कृतियों में पण्डित विशेषण का प्रयोग नहीं है वे उनकी दीक्षा के उपरान्त की कृतियां हों। **आत्मानुशासनतिलक** के अन्त में 'प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं' तथा

प्रवचनसार सरोजभास्कर के अन्त में 'इति श्री प्रभाचन्द्रदेव विरचिते' अंकित पाया जाता है। यह भी सम्भव है कि ये रचनायें किन्हीं अन्य प्रभाचन्द्र की हों। यहां यह उल्लेखनीय है कि **जैन ग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह** प्रथम भाग (वीर सेवा मन्दिर) में प्रशस्ति सं० १३४ **द्रव्य-संग्रहवृत्ति** की है जिसके अन्त में अंकित है—

'इति श्रीपरमागमिक भट्टारक-श्रीनेमिचन्द्र विरचित-षड्द्रव्यसंग्रहे श्रीप्रभाचन्द्रदेवकृत संक्षेपटिप्पणकं समाप्तम् ।।' और पं० परमानन्द शास्त्री ने विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र से भिन्न इसका कर्ता माना है।

प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान आचार्य आदि हो जाने तथा कृतियों में रचनाकार के विषय में पूर्ण विवरण के अभाव में विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र का काल निर्धारण करने में विद्वानों में काफी ऊहापोह और मतभेद रहा, तथापि **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** में धारा नरेश भोजराज और **न्यायकुमुदचन्द्र, आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध** एवं **समाधि-शतक-टीका** में श्री जयसिंहदेव का स्पष्ट उल्लेख होने से तथा अन्य अन्तः एवं बहिर्साक्ष्यों के परीक्षण के आधार पर डा० ज्योति प्रसाद जैन, पं० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य और डा० नेमिचन्द्र शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इनका समय ९८० ई० से १०६५ ई० के मध्य अनुमानित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** और **न्यायकुमुदचन्द्र** जैसे तर्क और न्याय विषयक ग्रन्थों के रचयिता, **शब्दाम्भोजभास्कर** और **शाकटायनन्यास, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थवृत्ति, समाधितन्त्र** और **क्रियाकलाप** जैसे पूर्ववर्ती गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धांतिक ग्रन्थों का भाष्य करने वाले तथा संस्कृत गद्य में कथा-कहानी जैसे ललित विषय पर लेखनी चलाने वाले विवेच्य प्रभाचन्द्र विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, अद्भुत क्षमता के प्रकाण्ड पण्डित थे।

इनके अतिरिक्त प्रभाचन्द्र नामधारी जिन अन्य विद्वान आचार्यों आदि का विवरण मिलता है उनका संक्षिप्त परिचय कालक्रमानुसार निम्नवत है :—

(१) **जैन शिलालेख संग्रह**, प्रथम भाग, में संकलित श्रवण-बेलगोल के शिलालेख १ (लगभग शक सं० ५२२ अर्थात् ६०० ई०) में उल्लिखित आचार्य प्रभाचन्द्र जो भद्रबाहु श्रुतकेवलि (ल० ३५० ई० पू०) के शिष्य राजा चन्द्रगुप्त रहे बताये जाते हैं।

(२) बृहद्प्रभाचन्द्र जिन्होंने उमास्वामि के मूल **तत्त्वार्थसूत्र** के सूत्रों का संक्षिप्तीकरण करते हुए १० अध्यायों में शताधिक सूत्रों में **तत्त्वार्थसूत्र** की रचना की थी। यद्यपि इस सूत्र ग्रंथ में पूज्यपाद और अकलंकदेव आदि के आधार पर यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्द्धन भी किया गया बताया जाता है, इन बृहद्प्रभाचन्द्र का समय उमास्वामि (४०-९०ई०) के उपरान्त ही सम्भव है।

(३) **अर्हद्प्रवचन** के कर्ता प्रभाचन्द्र जिन्होंने उक्त बृहद्प्रभाचन्द्र के **तत्त्वार्थसूत्र** के अध्ययनोपरान्त उक्त ग्रंथ की रचना ५ अध्यायों में ८४ सूत्रों में की बताई जाती है। अकलंकदेव (६२५-६७३ ई०) द्वारा अपनी **तत्त्वार्थराजवार्तिक** ५/३८ में 'उक्तञ्च अर्हत्प्रवचने' लिखकर एक **अर्हत्प्रवचन** का निर्देश किया गया है जो कदाचित् उक्त ग्रन्थ ही हो।

(४) देवनन्दि पूज्यपाद (४६४-५२४ ई०) के **जनेन्द्र महान्यास** में 'रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य' द्वारा उल्लिखित प्रभाचन्द्र।

(५) परलुरु निवासी आचार्य विनयनन्दि के शिष्य प्रभाचन्द्र जिन्हें चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा प्रथम (शक सम्वत् ४८९ अर्थात् ५६७ ई०) ने दान दिया था।

(६) पुन्नाटसंघीय जिनसेन कृत **हरिवंशपुराण** (७८३ ई०) में उल्लिखित कुमारसेन के शिष्य प्रभाचन्द्र।

(७) सेनसंघीय जिनसेन स्वामी (७७०-८५० ई०) कृत **आदिपुराण** में उल्लिखित कवि प्रभाचन्द्र जिन्होंने **चन्द्रोदय** की रचना की थी।

(८) **प्रभावक-चरित** (१२७७ ई.) के रचयिता प्रभाचन्द्र सूरि।

(९) सेनगण के भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जिनका समय १२वीं शती ई० अनुमानित है।

(१०) भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जो चमत्कारी कार्य करने के लिए प्रसिद्ध थे।

(११) दिल्ली के भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र (१४७९-१५२९ ई०) जो वि० सं० १५७१ (१५१४ ई०) में दिल्ली में भट्टारक बने और बाद में जिन्होंने अपनी गद्दी चित्तौड़ स्थानांतरित की। 'षट्तर्कतार्किकचूड़ामणि', 'वादिमदकुद्दल' और 'अबुधप्रतिबोधक' आदि विशेषणों से अलंकृत इन भट्टारक प्रभाचन्द्र को अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करवाकर ग्रंथ संरक्षण का कार्य करने का श्रेय है।

(१२) भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र।

—रमा कान्त जैन

कबीर साहित्य में जैन अध्यात्म की झलक

—श्री पन्ना लाल जैन

आज से लगभग छह सौ वर्ष पूर्व जैन सिद्धांत के विद्वान बनारसीदास ने **समयसार** के अध्यात्म को **समयसार नाटक** नामक ग्रंथ में गुंथित किया था। लगभग उसी शताब्दी में कबीरदास नाम के एक अक्खड़ संत आध्यात्मिक व विवेकपूर्ण कथन के लिए प्रसिद्ध हुए। इन विद्वानों के विचार व साहित्य में जो विवेचन हैं वह अध्यात्म के सिद्धान्तों का निष्कर्ष ही कहा जायेगा। इन विद्वानों की आध्यात्मिक रचना शैली व सिद्धांत में बहुत साम्य पाया जाता है।

कबीर दास एक जुलाहा के घर पर पले और बढ़े। यद्यपि वह अनपढ़ थे उनके तर्क व आध्यात्मिक भावनायें इतनी तर्क पूर्ण व सही हैं कि कोई भी इन्हें विद्वान संत मानने में नहीं चूकता।

विद्वान वर्ग इनकी विलक्षण प्रतिभा व ज्ञान को किसी धर्म से प्रभावित नहीं मानता है। इनके प्रभु राम, ईश्वर या अल्लाह को किसी वर्ग या धर्म विशेष की मान्यता से प्रभावित नहीं कहा जा सकता। इन्होंने आत्मा को ही प्रभु, ईश्वर या खुदा का प्रतिरूप माना है।

जम्बूदीप के तुम सब हंसा, गहिलो शब्द हमार—
दास कबीरा आपको देहिगे, निर्गुण की टकसार।

(कबीर शब्दावली)

सुर नर मुनिजन पीर औलिया, यह सब उरके तीर,
अल्लह राम की गम नहीं, तह घर किया कबीर।

(साखी संग्रह, पृ० ६२२)

कबीर ने मुसलिम ग्रंथों और हिन्दू ग्रंथों दोनों को धोखा देने वाला बतलाया और कहा कि इनके कथन भ्रम पूर्ण और असत्य हैं। वह गुरुओं और सूफी संतों को कागजी या शास्त्रीय विद्वान कहते थे और उन्हें सत्मार्ग प्रणेता नही मानते थे।

तू कहता है कागद की लेखी, मैं कहता हूं आखों देखी ।

और—अपने-अपने शीष की सबै लीन है मान,
हरि की बात दुरंतरी परी न काहू जानि ।

जैन सिद्धांत में भी आत्मा का विशुद्ध रूप ही प्रभु या परमात्मा माना गया है और अंधविश्वास को "मिथ्यात्व" या "अज्ञान" कहा गया है । यदि सर्व साधारण की मान्यता के अनुसार कोई जैन मूर्ति में भगवान या उसकी पूजा अर्चना को ही धर्म मानता है तो वह कबीर के कथन की ही पुष्टि करता है । **नाटक समयसार** में बनारसीदास ने कहा है—

जाके घर समता नहीं, ममता मगन सदीव,
रमता राम न जानई, सो अपराधी जीव ।

और कबीर भी कहते है—

समदृष्टि सो जानिये शीतल समता होय,
सब जीवन की आत्मा लखे आपसी सोय ।
समदृष्टि सतगुरु किया, मेटा जरद विकार,
जहां देखा तह एक ही, साहब का दीदार ।

अविवेकी साधना पर बनारसीदास कहते हैं—

ध्यान धरै करै इन्द्रिय निग्रह,
विग्रह सो न गिनै बिन नत्ता ।
त्यागि विभूति, भभूत मढ़े तन,
जोग गहै भव भोग विरक्ता ।।
मौन रहे, गहि भेद कषाय,
सहै बध बंधन होय न तत्ता ।
ए करतूति करै शठ पै,
समुझै न अनातम आतम सत्ता ।।

और कबीर के अनुसार—

मैं लाग्या इस एक सों, एक भया सब मांहि ।
सब मेरा मै सबनि का, यहां दूसरा नांहि ।

तथा—भव सागर जल विष भरा, मन नहिं बांधे धीर,
शब्द विवेकी पिउ मिला, उतरा पार कबीर ।।

आत्मदृष्टि या स्वानुभव ही धर्म साधन की पराकाष्ठा है। हमारा वाह्य वेष या पूजा पाठ का आडम्बर, आत्मानुभूति के बिना निष्प्रयोजन है, बेकार है। हमारे जितने धर्म साधन के क्रिया कलाप हैं—यदि उनका दृष्टिकोण आत्मानुभूति से परे सांसारिक विभव या विषय-पोषण है तो यह सब साधना बेकार है—बिना अंक के शून्य की तरह निरर्थक है।

आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व कबीर का एक भजन बिहार के तीर्थ राजगृही की यात्रा के अवसर पर मुझे एक कोली युवक ने सुनाया था। मैंने उस युवक से कहा कि यह भजन बहुत बड़ा व क्लिष्ट है पर तुम इसे लिख कर दो ताकि इसे समझ सकूं व तुम्हें विस्तारपूर्वक इसकी व्याख्या कर समझा सकूं। दूसरे दिन उस युवा छात्र ने भजन लिख कर उसका भाव समझने की उत्कंठा प्रकट की—

गुरु ने पठायो चेला अमृत लाइयो।
पहली भिक्षा अन्न की लईयो, गांव नगरिया पास न जईयो,
हिन्दू तुरक छोड़ के बंदे, झोली भर-भर लइयो···बंदे झोली···
दूजी भिक्षा मांस की लइयो, जीव जन्तु के पास न जइयो,
जिंदा मुर्दा छोड़ के बंदे, हांडी भर-भर लइयो···बंदे हांडी···
तीजी भिक्षा जल की लइयो, ताल-तलैया छोड़ के बंदे,
तुम्बी भर-भर लइयो बंदे, तुम्बी भर-भर लइयो।
चौथी भिक्षा लकड़ी लइयो, बन जंगल के पास न जइयो,
गीली-सूखी छोड़ के बंदे, गठ्ठर भर-भर लइयो···
बंदे गठ्ठर भर-भर·····
कहे कबीर सुनो भई संतो यह पद है निर्वानी,
जो इस पद के अर्थ लगावे वही संत सुज्ञानी।

इस भजन में पहला पद साम्य भाव का, दूसरा पद भेद-विज्ञान का, तीसरा पद व्यापक सम्यक चरित्र का तथा चौथा पद सम्यक तप का विवेचन करता है। कबीर का यह एक ऐसा तथ्यपूर्ण भजन है जो जैन अध्यात्म का भी सारतत्त्व प्रकट करता है।

———

षट्खण्डागम का खण्ड विभाग

—पं० नेमचंद डोणगांवकर

षट्खण्डागम बाबत एक मत ऐसा है कि प्रथम पांच खण्ड पुष्पदन्त आचार्य ने लिखे, तथा छठवां महाबन्ध नाम का खण्ड भूतबलि आचार्य ने लिखा। इसका आधार यह है कि **धवल** का वर्गणा खण्ड जहां समाप्त होता है, वहाँ सूचित किया गया है—जं तं बंधविहाणं तं चउविहं—पयडिबन्धो, ट्ठिदिबन्धो, अणुभाग बंधो, पदेसबन्धो चेदि। एदेसिं चदुण्हं बंधाणं विहाणं **भूदबलि भडारएण महाबन्धे** सप्पबंचेण लिहिदं त्ति अम्हेहिं अत्थ ण लिहिदं। नदो सपणे **महाबन्धे** एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि।,

और इंद्रनंदी ने **श्रुतावतार** में कहा है—

तेन ततः परि पंडितां भूतबलिः सत् प्ररूपणां श्रुत्वा।
षट्खण्डागम रचनाभिप्रायं पुष्पदंत गुरोः ।।१३७।।
विज्ञायाल्पायुंष्यान्ल्पमतिमानवान् प्रतीत्य ततः।
द्रव्य प्ररूपणाद्याधिकारः खण्ड प्रपंचकस्यान्वक ।।१३८।।
सूत्राणि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ पूर्व सूत्र संहितानि।
प्रविरच्य महाबंधाव्हयं ततः षठ्कं खण्डम् ।।१३९।।
त्रिंशत् सहस्र सूत्र ग्रन्थं व्यरचदसौ महात्मा।..... ।।१४०।।

अर्थात् बाद में सत्प्ररूपणाको पढ़ कर तथा पुष्पदन्त गुरू का षट्खण्डागम रचने का अभिप्राय सुनकर, और यह प्रतीति होने पर कि पुष्पदंत अल्पायु तथा अल्पबुद्धि वाले हैं द्रव्यप्ररूपणा आदि में जिनका अधिकार है उन भूतबलि ने आगे के खण्ड रचने का सही प्रपंच किया। पूर्व सूत्रों सहित उस ग्रंथ में छह हजार सूत्र प्रमाण रचना की। और महाबंध नाम का छठवा खण्ड भी रचा। इस प्रकार उन पुष्पदंत महात्मा की रचना तीस हजार सूत्र प्रमाण होती है।

कुछ विद्वान मात्र प्रथम खण्ड पुष्पदंत का तथा शेष पांच खण्ड भूतबलि के होने की आशंका करते हैं क्योंकि द्रव्य प्रमाणानुगम नाम का एक अधिकार खुद्दाबंध नाम के द्वितीय खण्ड में है, यहां से या इस पूरे खण्ड को आचार्य भूतबलि ने ही रचा हो सकता है। किंतु

द्रव्यप्रमाणानुगम नाम का यह दूसरा खण्ड नहीं है, द्रव्य प्रमाणानुगम का अर्थ होता है 'द्रव्यों की संख्या का ज्ञान' और चतुर्थ खण्ड के प्रारम्भ में द्रव्य तथा प्रमाण का वर्णन किया गया है।

वीरसेनाचार्य **धवल** पु० १ के पृष्ठ ७२ पर लिखते हैं—भूतबलि भयवदा जिणपालिदेण, महाकम्पयडिपाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण बुद्धिणा पुणो दव्वप्रमाणाणुगमादि काऊण गंथरचणा कहा।"

इसके आधार से कुछ विद्वान **धवल** प्रथम पुस्तक में आये हुए मात्र १७७ सूत्र को ही पुष्पदंत कृत मान कर शेष रचना भूतबलि की मानते हैं, किन्तु इस सन्दर्भ में विचारणीय है कि मात्र १७७ सूत्र रच कर भेजने से **षट्खंडागम** रचने का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता; प्रथम तथा द्वितीय खंड को सत्प्ररूपणा का ही अंग माना गया है; **धवल** की ७वीं पुस्तक, द्वितीय खंड, में आदि मंगलाचरण में मात्र पुष्पदंत का ही नाम होने से क्या वह खंड भी उनका ही होगा, या मध्य दीपक न्याय से पुष्पदंत के तीन खंड रचने की वह सूचना होगी; तथा क्या तीसरा खण्ड भी पुष्पदंत का ही होगा, क्योंकि बिना मंगलाचरण किसी ग्रंथ का प्रारम्भ नहीं हो सकता, और वहीं मंगलाचरण चतुर्थ खण्ड में माना जाने से वहां से ही आचार्य भूतबलि की रचना हो सकती है।

श्रुतावतार कथा या **धवल** टीका का अभ्यास करने वालों का यही मत होगा कि—(१) उसके प्रथम तीन खण्ड पुष्पदंत के ही हैं। इसकी एक प्रति आचार्य कुन्दकुन्द के पास गयी थी। उस पर कुन्दकुन्दाचार्य ने **परिकर्म** नाम की १२ हजार अनेक प्रमाण टीका भी लिखी थीं। यथा—

श्रीपद्मनंदी मुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाणः।

ग्रंथ परिकर्म कर्त्रा **षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य** ॥१९१॥—**श्रुतावतार** को देखने पर भी इसकी पुष्टि होती है।

(२) प्रथम तीन खण्डों में २० प्ररूपणा की गई हैं। गुणस्थान + जीवस्थान + प्रज्ञप्ति + प्राण + संज्ञा + १४ मार्गणा + उप-

योग आदि का वर्णन है। प्रथम खण्ड के विषय को प्रकारांतर से दूसरे खण्ड में प्ररूपित किया गया है तथा तीसरे खण्ड में कौन सा और कितना बंध किस गुणस्थान में तथा मार्गणास्थान में सम्भव है इसका वर्णन है। यहां कर्म बंध की मूल व उत्तर प्रकृति का वर्णन करने से पुष्पदंत को उत्तर प्रकृति के २४ अणुयोगद्वार होने की स्मृति आई हो। अतः २४ अणुयोगद्वारों का वर्णन भूतबलि के लिये छोड़ा गया हो। यह भी सम्भव है कि उसी समय पुष्पदंत को किसी शरीर कमजोरी का अनुभव हुआ हो।

(३) मंगलाचरण प्रथम तथा चतुर्थ खण्ड के आदि में पाया जाता है। स्वयं धवलकार भी इन्हीं खण्डों के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं।

(४) निक्षेप वर्णन प्रथम खण्ड तथा चतुर्थ खण्ड में भी आया है।

(५) प्रथम खण्ड के पृष्ठ ६६-७२ तक तथा चतुर्थ खण्ड के पृष्ठ १३०-१३१ तक श्रुतावतार का वर्णन पाया जाता है।

(६) धवल की रचना के पश्चात् उसके सबसे बड़े पारगामी विद्वान नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने इन समान दो ही विभागों को ध्यान में रख कर जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड की रचना की।

पं० फूलचंद जी ने भी धवल, १, पृ० ६८ पर स्पष्ट किया है कि—'सत्कर्म प्राभृत अर्थात् षट्खण्डागम तथा उसकी धवल टीका की रचना को देख कर ज्ञात होता है कि उसके मुख्यतः दो विभाग हैं। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत जीवट्ठाण, खुद्दाबंध व बंधस्वामित्वविचय है।.....उन सबका विषय भी जीव या बंधक की मुख्यता से है। जीवट्ठाण में गुणस्थान और मार्गणाओं की अपेक्षा सत्, संख्या आदि रूप से जीव तत्त्व का विचार किया गया है। खुद्दाबंध में सामान्य की अपेक्षा बंधक का और बंध स्वामित्वविचय में विशेष की अपेक्षा बंधक का विवरण है। दूसरे विभाग में पुनः मंगलाचरण, श्रुतावतार दिया गया है। और उसमें यथार्थतः कृति, वेदना आदि चौबीस अधिकारों का वर्णन किया है।'

इन दो विभागों की पुष्टि निम्नलिखित से भी होती है—

(१) वेदना नाम चतुर्थ खण्ड के आदि में मंगल सूत्र पाये जाते हैं। उनकी टीका में **धवल** कार ने खण्ड विभाग और उनके मंगलाचरण की व्यवस्था सम्बन्धी सूचना दी है।

(२) **धवल**कार ने चतुर्थ खण्ड में जो कुछ कहा है, उससे प्रकृत विषय पर और भी प्रकाश पड़ता हैं।

(३) विषय के तारतम्य की दृष्टि से भी **धवल** अपने प्रस्तुत रूप में कहीं अपूर्ण नज़र नहीं आती। प्रथम तीन **खण्ड** तो पूरे ही हैं। चौथे वेदना खण्ड में कृतिवेदना अणुयोगद्वार प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमें प्रथम छह कृति, वेदना, पास, कम्म, पयडि और **बन्धन** स्वयं भूतबलि द्वारा ही प्ररूपित होने को **धवल** में **पंचम** खण्ड के अन्त में कहा गया है।

(४) मूडबिद्री की ताड़पत्रीय प्रति पर महाधवल (महाबंध) का मंगलाचरण श्लोक, ग्रंथ की प्रशस्ति वगैरह कुछ भी परिचय नहीं है। इससे **धवल** टीका मात्र पंचम खण्ड तक पुस्तक नं० १६ तक ही होने की सिद्धि होती है, क्योंकि उसके अन्त में **धवल**कार की मूल प्रशस्ति पायी जाती है, तथा आगे इसकी प्रति किसने लिखी और किसको दी गयी, इसकी भी एक अन्य प्रशस्ति यहां मिलती है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि भूतबलि के रचित **धवल** के तीन ही खण्ड हों तो उसका क्या आधार है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित विचारणीय हैं—

(i) बंधक के ११ अणुयोगद्वारों में पांचवा अणुयोग द्रव्य-प्रमाणानुगम है। वही जीवट्ठाण की संख्या प्ररूपणा का उद्गम-स्थान है।

(ii) **धवल** पु० १ प्रस्तावना के पृष्ठ ६४, ६५, ६६ में जो चार्ट दिये हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि उत्तर महाकर्म-प्रकृतिपाहुड के विषय में ही प्रथम तीन खण्डों के भी विषय संग्रहीत हैं, २४ अणुयोगद्वारों में १२वां अणुयोग बंधस्वामित्वविचय है जो ग्रन्थ के तीसरे खण्ड का ही नाम है, २३वां अणुयोग भाव नाम का है जो

जीवट्ठाण के ७वें अधिकार का विषय है, और बंधक खुद्दाबन्ध का विषय है।

(iii) वीरसेनाचार्य ने पु० ७ के मंगलाचरण में पुष्पदंत का उल्लेख कर मध्य दीपक न्याय से उनके प्रथम तीन खण्डों की सूचना दी हो सकती है।

(iv) पंचम खण्ड के अन्त में धवलकार ने जो पंचिका लिखी है उसके आदि में वे लिखते हैं—"महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि वेदणाओ चोव्विसमणुयोगद्दारेसु तत्थ कदि वेदणा त्ति जाणि अणुयोगद्दाराणि वेदणाखंडम्मि, पुणो पास (आदि) चत्तारि अणुयोग-द्दारेसु तत्थ बंधबंधणिज्जमान णियोगेहि सह वग्गाणाखंडम्मि, पुणो बंधणिधाण मणियोगो खुद्दाबन्धम्मि सप्पवंचेण परूविदाणि।..... तो वि तस्स गम्भीरत्तादो अत्थ विषयपदाणमत्थे भोरूद्धयेण पंचिय सरूवेण भणिस्सामो।" (धवल, पु० २, पृ० ३१) इसी कारण जिन-पालित ने सत्प्ररूपणा के जो सूत्र भूतबलि को दिये थे, उनको कायम रख कर उसकी मात्र छह हजार सूत्र प्रमाण वृद्धि भूतबलि ने की थी, अर्थात् कुल १६ पुस्तक में से प्रथम ७ पुस्तक पुष्पदंत की तथा उत्तर ९ पु० भूतबलि की थीं। या श्रुतावतार के अनुसार, प्रथम तीन खण्डों की ३० हजार सूत्र प्रमाण रचना पुष्पदंत की + छह हजार सूत्र प्रमाण वृद्धि भूतबलि की, इस प्रकार धवल की कुल ७२ हजार श्लोक प्रमाण रचना में बराबर आधी-आधी रचना दोनों आचार्यों की हो सकती हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि द्वितीय खण्ड के पृष्ठ १ में तथा तृतीय खण्ड के पृष्ठ २ में महाकर्म प्रकृति पाहुड़ का प्रारम्भ कृति-वेदना अधिकारों से माना गया है। प्रथम खण्ड के सूत्र नं० ४ तथा द्वितीय खण्ड के सूत्र नं० २ में तथा प्रथम और तृतीय खण्ड में पुनरूक्ति साम्य भी है। इसी प्रकार तृतीय खण्ड में भी कहीं प्रश्न एक है तो उत्तर में भिन्नता है, कहीं प्रश्न और उत्तर के सूत्रों में भिन्नता है और कहीं उत्तरों में भिन्नता पायी जाती है।

——

जैन परम्परा में देव समूह

—श्री गुलाब चन्द्र जैन

जैन धर्म शास्त्रों के अनुसार स्थूल रूप से देव चार प्रकार के होते हैं—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी एवं वैमानिक। अन्तर्भेद के अनुसार भवनवासी देव दस, व्यंतर आठ, ज्योतिषी पांच व वैमानिक देव दो मुख्य भेदों में विभक्त हैं। असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार एवं दिक्कुमार—ये दस जाति के देव भवनवासी कहे जाते हैं। किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत एवं पिशाच—इन आठ की गणना व्यंतर देवों में की जाती है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे—ये सभी ज्योतिषी देव हैं। वैमानिक देवों के अनेक प्रकार हैं, किन्तु उनके दो प्रमुख भेद हैं—कल्पोपन्न व कल्पातीत। पद एवं प्रतिष्ठा के आधार पर ये चारों प्रकार के देव दस वर्गों में विभक्त हैं। इनमें इन्द्र राजा या शासक होता है। सामानिक राज-गुरु तुल्य होते हैं। त्रायस्त्रिंश की गणना महामंत्री या मंत्री के रूप में की जाती है। पारिषद इन्द्र की सभा के पार्षद होते हैं। आत्मरक्ष अंगरक्षक, लोकपाल थानेदार, तथा अनीक सैनिकों की श्रेणी में आते हैं। देवनगर स्वर्ग के सामान्य नागरिक प्रकीर्णक कहलाते हैं तथा अभियोग्य एवं किल्विषक उच्च व निम्न श्रेणी (चांडालादिक) के सेवकों के वर्ग हैं। यह वर्ग भेद सभी जाति के देवों में पाया जाता है, किन्तु त्रायस्त्रिंश एवं लोकपाल—ये दो भेद व्यंतर व ज्योतिषी देवों में नहीं होते हैं। निवास-भूमि, शारीरिक-संरचना, आचार-विचार, आवागमन-सीमा एवं आयु आदि की अपेक्षा से भी इन सभी में भिन्नता पाई जाती है। व्यंतर देवों में यक्ष-यक्षी आदि के अतिरिक्त सोलह विद्यादेवता, आठ मातृका, नव ग्रह, एवं हरिनैगमेश, क्षेत्रपाल, मणिभद्र, गणेश, शनि एवं लक्ष्मी आदि सभी थोड़े-बहुत भेद से, एक ही जाति के हैं।

सभी तीर्थंकरों के अनुषंगी एक-एक यक्ष व यक्षी होते हैं। तीर्थंकरों के जीवन काल में ये उनकी सेवा करते हैं तथा किसी भी

प्रकार का उपसर्ग उपस्थित होने पर उसके निवारण हेतु प्रयत्न करते हैं। इनकी नियुक्ति देवराज इन्द्र द्वारा की जाती है। इन्हें **शासन देवता** की संज्ञा प्रदान की गई है। **वास्तु शास्त्र, प्रतिष्ठातिलक** एवं ठक्करफेरू के **वास्तुसार प्रकरण** में इन यक्ष-यक्षियों के निवास-स्थल, शारीरिक-रचना, वर्ण, मुख एवं भुजाओं की संख्या, वाहन तथा हाथों में धारण किये हुए अस्त्र-शस्त्र, पत्र-पुष्प आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है। तीर्थंकर प्रतिमा के आसन के दोनों कोनों पर लघु आकार में दाहिनी ओर यक्ष एवं बांयी ओर यक्षी प्रतिमा के अंकन का विधान है। पं० आशाधर जी के अनुसार ध्यानस्थ सौम्य मुख मुद्रा, नासाग्र दृष्टि, अष्ट प्रातिहार्य एवं यक्ष-यक्षी अंकन संयुक्त प्रतिमा ही श्रेष्ठ है। प्रतिमा पर लांछन के अभाव में, इन यक्ष-यक्षी प्रतिमाओं द्वारा यह निश्चित किया जा सकता है कि यह प्रतिमा किस तीर्थंकर की है।

क्रमानुसार तीर्थंकरों के यक्ष व यक्षिणियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

तीर्थंकर	यक्ष	यक्षी
१. ती० आदिनाथ	गोमुख यक्ष	चक्रेश्वरी (अप्रतिहत चक्रा)
२. ,, अजितनाथ	महायक्ष	अजिता (रोहिणी)
३. ,, संभवनाथ	त्रिमुख यक्ष	प्रज्ञप्ति (नम्रा)
४. ,, अभिनंदन	यक्षेश्वर यक्ष	वज्रशृंखला (दुरितारि)
५. ,, सुमतिनाथ	तुम्बरु यक्ष	पुरुषदत्ता (खड्गधरा)
६. ,, पद्मप्रभ	पुष्प यक्ष	मनोवेगा (मोहिनी)
७. ,, सुपार्श्वनाथ	मातंग यक्ष	काली (मानवी)
८. ,, चंद्रप्रभ	श्याम यक्ष	ज्वालामालिनी (ज्वालिनी)
९. ,, पुष्पदंत	अजित यक्ष	महाकाली (भृकुटि)
१०. ,, शीतलनाथ	ब्रह्म यक्ष	मानवी (चामुण्डा)
११. ,, श्रेयांसनाथ	ईश्वर यक्ष	गौरी (गौमेधुकी)
१२. ,, वासुपूज्य	कुमार यक्ष	गान्धारी (विद्युत मालिनी)
१३. ,, विमलनाथ	चतुर्मुख यक्ष	वैरोटी (विदिता)

१४. ,,	अनंतनाथ	पाताल यक्ष	अनंतमति (विजृंभणि)
१५. ,,	धर्मनाथ	किन्नर यक्ष	मानसी (परभृता)
१६. ,,	शांतिनाथ	गरुड़ यक्ष	महामानसी (कन्दर्पा)
१७. ,,	कुंथुनाथ	गन्धर्व यक्ष	जया (गान्धारी)
१८. ,,	अरनाथ	श्वेन्द्र यक्ष	तारामति (काली)
१९. ,,	मल्लिनाथ	कुबेर यक्ष	अपराजिता (वैराती)
२०. ,,	मुनिसुव्रतनाथ	वरुण यक्ष	बहुरूपिणी (नरदत्ता)
२१. ,,	नमिनाथ	भृकुटि यक्ष	चामुण्डा (गान्धारी)
२२. ,,	नेमिनाथ	गोमेध यक्ष	अम्बिका (कूष्मांडिनी)
२३. ,,	पार्श्वनाथ	धरणेन्द्र यक्ष	पद्मावती
२४. ,,	महावीर	मातंग यक्ष	सिद्धायिका

यक्षिणियां अधिकांशत: एक मुखवाली होती हैं किन्तु उनके हाथ दो से आठ तक पाए जाते हैं। यक्षों के एक से आठ तक मुख होते हैं। श्वेताम्बर ग्रन्थों में यक्षिणियों के नामों में भिन्नता पाई जाती है।

प्रारम्भ में तीर्थंकर प्रतिमा के समीप किसी यक्ष-यक्षी की प्रतिमा अंकित करने का प्रचलन नहीं था। भैरों, मणिभद्र, क्षेत्रपाल, ब्रह्मयक्ष आदि यक्षों की प्रतिमाएं, क्षेत्र रक्षा हेतु द्वार चौखट के ऊपर या प्रवेश द्वार के समीप स्थापित कर दी जाती थीं। उस काल में इनका कोई विशेष आकार भी नहीं होता था। किसी भी अनगढ़ बेडोल शिलाखंड पर सिन्दूर लगाकर, कल्पना द्वारा इन्हें इच्छित नाम दे दिया जाता था। इनकी विशेष पूजा भक्ति भी नही की जाती थी। अनेक प्राचीन जिनालयों में ऐसी यक्ष-यक्षी मूर्तियां आज भी देखी जा सकती हैं। उस समय इनके स्वतन्त्र मन्दिर बनाने का भी कोई प्रचलन नहीं था।

गुप्तकाल (सन् ३०० से ६०० ईस्वी) में तीर्थंकरों की विशाल, भव्य एवं कला पूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा, और प्रतिमा के आसन के दोनों ओर यक्ष-यक्षी प्रतिमा अंकित करने की प्रथा का भी प्रारम्भ हुआ। शनै-शनै: कला निपुण मूर्तिकारों ने

नारी के अंग-उपांगों को उभारते हुए, रूप लावण्य युक्त देवी-देवताओं की विभिन्न मुद्राओं में मनोहारी प्रतिमाओं का निर्माण किया। इनमें पद्मावती, अम्बिका, गौरी, चक्रेश्वरी, कालिका, तारा, लक्ष्मी आदि की मूर्तियां प्रमुखता से निर्मित हुईं। बौद्ध एवं हिन्दू समाज में सांसारिक मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु प्राचीन काल से ही इन देवियों की विशेष मान्यता रही है, और इनके स्वतन्त्र मन्दिर भी थे।

व्यंतरों के सम्बन्ध में जनता में मान्यता थी कि वे क्रुद्ध होने पर लोगों को कष्ट देते हैं एवं प्रसन्न होने पर मनोकामनाएं पूर्ण कर इच्छित धन-सम्पत्ति एवं सन्तान आदि प्रदान करते हैं। शरीर में प्रवेश कर वे अन्य व्यंतरों द्वारा किये गये उपद्रवों से मुक्ति का उपाय भी बताते हैं। इसी तारतम्य में कुछ मानवों जिन्हें ओझा या गुनिया कहा जाता है, पर व्यंतर देवों का अवतरण होने लगा तथा अन्धविश्वास के साये तले इन ओझाओं का व्यापार भी फलने-फूलने लगा।

इतर समाज की देखा-देखी जैन समाज भी इस कुदेव पूजा प्रथा से अप्रभावित न रह सका। कई जैन बन्धु स्वयं भी इन व्यंतरों से प्रभावित होने का प्रदर्शन करने लगे तथा कुछ जिनालय भी इन कुदेवों के आराधना स्थल बन गये। वीतरागी तीर्थंकरों की प्रतिमाओं द्वारा भी चमत्कार होने का प्रचार हुआ। कुसंस्कारो से भ्रमित जैन धर्मानुयायियों ने भी धर्म सिद्धान्तों की अवहेलना करते हुए इन कुदेवों को मन्दिरों के भीतर पहुँचा कर, उन्हें भगवान के अनुरूप वेदियों पर विराजमान कर दिया। तीर्थंकर प्रतिमाओं का आकार छोटा तथा उनके सेवक यक्ष-यक्षियों के आकार में वृद्धि हुई और वे उनके शीर्ष या मुकुट की शोभा मात्र बन कर रह गए। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की अपेक्षा उनकी यक्षी पद्मावती अधिक आदर की पात्र हो गईं। ज्ञान-लक्ष्मी की पूजा-भक्ति को भूल मिथ्या दृष्टि मानव धन-लक्ष्मी सोना-चांदी की पूजा करने लगा। भगवान महावीर के निर्वाण के पावन पर्व को धन-सम्पत्ति की पूजा का पर्व

मान लिया गया, अतः धन-लक्ष्मी की पूजा का विशेष प्रचलन प्रारम्भ हो गया।

व्यंतरादिक शासन देवता जिन भगवंतों के सेवक, रक्षक या भक्त होने के कारण हमारे आदर के पात्र तो हो सकते हैं, किन्तु उनकी पूजा-भक्ति करना व आरती उतारना न तो आगमोक्त है और न ही तर्क संगत। सामाजिक जीवन में भी तन-मन-धन से धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में सहयोग करने वाले व्यक्ति सभी से आदर प्राप्त करते हैं, उनकी पूजा नहीं की जाती है।

धर्म के मूल सिद्धांतों को विस्मरण कर रागी-द्वेषी कुदेवों की पूजा-भक्ति आगमोक्त एवं तर्क सम्मत नहीं है। आचार्य सोमदेव-सूरि ने **उपासकाध्ययन** में लिखा है—"जो तीनों लोकों के दृष्टा जिनेन्द्रदेव और व्यंतरादिक देवताओं की समान रूप से पूजा करता है वह नर्क में जाता है। अतः आपत्ति पड़ने पर भी विवेकी श्रावक आत्मरक्षार्थ शासन देवी-देवताओं की पूजा नहीं करता है।" धर्म की मूल भावना के अनुरूप जिन भगवंतों की पूजा-अर्चना से ही पुण्य का अर्थात् शुभ कर्मों का बंध होता है जिनके फलस्वरूप सभी सुख साधनों की उपलब्धि सम्भव है। इसके विपरीत कुदेवों की पूजा-भक्ति पाप बंध का कारण तो है ही, पूर्वोपार्जित पुण्य फल के क्षय का भी निमित्त होती है।

——

ॐ - एक विमर्श

—डा० मनोहर भण्डारी

ऐसी मान्यता है कि इस विश्व के आविर्भाव के पूर्व केवल ध्वनि थी। भारतीय संस्कृति, वेद पुराण आदि के मतानुसार यह नाद या 'ध्वनि' ॐ शब्द के रूप में थी। इसीलिए इस प्रथम शब्द को ईश्वर या ब्रह्म के समान माना गया है। अ + उ + म् के योग से बना यह शब्द, शब्द-ब्रह्म या शब्द-प्रणव कहलाता है।

ईसाई लोग अपनी प्रार्थना के अन्त में 'अमेन' और मुस्लिम नमाज के अन्त में 'आमीन' का उच्चारण करते हैं। दरअसल विश्व के सभी धर्मों एवं सभ्यताओं में ॐ किसी न किसी रूप में ईश्वर के आशीर्वाद के रूप में मौजूद है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इसकी धार्मिक महत्ता से प्रभावित होकर इस पर कुछ अनूठे प्रयोग किये हैं। प्रातः खाली पेट आलथी-पालथी लगा कर सीधे बैठ कर गहरी श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास कर उन्होंने ॐ शब्द का उच्चारण करने का प्रयोग किया। उन्होंने श्वास को भीतर लेते समय ॐ शब्द का नाद करने का अभ्यास किया। इससे शरीर स्वस्थ तथा मन और मस्तिष्क में सकारात्मक प्रभाव देखे गये। क्रोध चिन्ता, तनाव, लोभ आदि विकार दूर हुए और करुणा, समता एवं मैत्री का भाव जागृत हुआ।

ॐ किसी धर्म-विशेष का प्रतीक नहीं है वरन् यह सर्व धर्म का प्रतीक है क्योंकि यह शब्द धीरे-धीरे हमारे तन, मन, मस्तिष्क, बुद्धि, और विवेक को सात्विक बल देते हुए हममें सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

यह ध्यातव्य है कि हमारे धर्मों में जिन विधियों, शब्दों, परम्पराओं का वर्णन है उनकी पृष्ठभूमि में दिव्य वैज्ञानिकता हो सकती है। उसे जाने बिना धर्म को पाखण्ड सिद्ध करने की गलती से बचना चाहिए।

——

कैन्सर में तब्दील होती शौरसेनी की गांठ

—पं० पद्मचन्द्र शास्त्री

हमने दो दशक पूर्व से सावधान किया था और अब तक करते रहे हैं कि कोई हमारे आगमों से खिलवाड़ न करे—न भाषागत संशोधन करे, और संशोधन के नाम पर जो भी दिया जाए टिप्पण में दिया जाए। इसकी सम्पुष्टि अनेक विद्वानों द्वारा की गई। उक्त कथन हमने तब किया जब प्राकृत को व्याकरण पुष्ट मानकर दिगम्बर-आगमों की भाषा को शौरसेनी घोषित किया गया।

सभी जानते हैं कि श्वेताम्बरों ने अपने आगमों की भाषा को भगवान महावीर और मूलाचार्य गणधर की अर्धमागधी घोषित कर रखा है। हालांकि वे आगम वास्तव में अर्धमागधी में नहीं अपितु जैन महाराष्ट्री भाषा में निबद्ध किये गये है और आचार्य हेमचन्द्र ने तदनुसार ही व्याकरण की रचना की है। वास्तव में तो दिगम्बर आगम ही अर्धमागधी के हैं और व्याकरण से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यतः प्राकृत प्रकृति की बोली है—व्याकरणादि द्वारा संशोधित (संस्कारित) नहीं, जैसा कि ताण्डव रचा जा रहा है, क्योंकि सभी व्याकरण बाद की रचनाए हैं। आगम भाषा के विषय में हमारे आगमों में कहा गया है—

अर्धं च भगवद्भाषाया मगधदेश भाषात्मकं अर्धं च सर्वभाषात्मकम्।

—दर्शनपाहुड टीका, ३५/३८/१३

अट्ठारस महाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।

—तिलोयपण्णत्ति, ५८४/९०

ण च दिव्वज्झुणी अणक्खरप्पिया चेव अट्ठारस सत्तसयभास कुभासप्पिय। **—धवला, ९/४/४४, पृ० १३६**

तववागमृतं श्रीमत्सर्वभाषा स्वभावकम्।
प्रणीत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि॥

—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, ९७, अरहनाथस्तुति

परम्परित पूर्वाचार्यों के उक्त कथनों के आधार पर हम, दावे के साथ, दिगम्बर आगमों की भाषा को अर्धमागधी ही मानते हैं

और जो लोग उक्त कथनों के आधार को झुठलाकर अर्धमागधी से मुँह मोड़ कर आगमभाषा को मात्र शौरसेनी प्रचारित करते हैं वे उक्त आचार्यों को मिथ्या सिद्ध कर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। पूजा में भी कहा है—

दश अष्टमहाभाषा समेत लघुभाषा सात शतक सुचेत।

देवों के द्वारा किए गए अतिशयों में भी वर्णन है—**'देवरचित हैं चारदश अर्धमागधी भास'**। इसे अब शौरसेनी में व्याकरण की दुहाई देकर बदला जा रहा है, जो कि दिगम्बरत्व को घातक होगा। यदि आगम भाषा शौरसेनी है तो किसी भी दिगम्बर आगम में या अतिशयों में इसका उल्लेख होना चाहिए। क्या अतिशयों में कहीं ऐसा कहा है—**'देव रचित हैं चारदश शूरसेन की भास'**, परन्तु हमारे देखने में तो ऐसा नहीं आया और जब आगम में ऐसा नहीं है तब हम किसी भाँति भी मानने को तैयार नहीं कि दिगम्बर आगमों की भाषा शौरसेनी है।

विगत में श्रुतपंचमी के अवसर पर **पद्मपुराण** के निम्नलिखित श्लोक के द्वारा शौरसेनी की यद्वा-तद्वा पुष्टि की गई—

नामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता।
प्राकृती शौरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृताः ॥२४॥ ११

उस सयय भी हमने लिखा था कि "उक्त श्लोक तीर्थंकर मुनिसुव्रत के शासन काल में उत्पन्न केकयी के भाषा ज्ञान के सम्बन्ध में है कि उक्त तीनों (संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी) भाषाओं को जानती थी। पर शौरसेनी प्राकृत पोषकों को शौरसेनी शब्द से ऐसा लगा कि यह शौरसेनी प्राकृत है जबकि वह भाषा प्राकृत से भिन्न शौरसेनी थी। यदि प्राकृत होती तो प्राकृत शब्द में गर्भित हो जाती, उसका पृथक कथन न होता। बस, इन्होंने उस शौरसेनी को अपनी अभीष्ट प्राकृत के भेद के रूप में प्रचारित कर दिया।" जबकि तीर्थंकरों की देशना में एकरूपता का कथन शास्त्रों में मिलता है। क्या मुनि-सुव्रतनाथ और बाद के किसी तीर्थंकर ने शौरसेनी में देशना दी थी और वहाँ देवकृत १४ अतिशयों में अर्धमागधी के स्थान पर शौर-सेनी का कहीं उल्लेख है? क्या देव अतिशय बदलते रहते है? अस्तु।

कुछ लोग शौरसेनी के व्यामोह में मूल को ही नष्ट करने की प्रक्रिया में जा रहे हैं। 'णमोकार मंत्र' मूल और अनादिनिधन मंत्र है जिस पर हमारी अटूट श्रद्धा है और इसी पर जिनशासन टिका है। यदि शौरसेनी-करण का राग अलापते रहे तो वह मूलमन्त्र भी खटाई में पड़ जायेगा, अन्यथा दिगम्बर आगमों की मूल परम्परित प्राचीन भाषा को शौरसेनी घोषित करने वाले व्याकरण पक्ष व्यामोही व्यक्ति, अपनी मान्यता की कसौटी मंगलाचरण मूलमन्त्र में ढूंढ़कर बतायें कि उक्त मंगलाचरण में कितने पद शौरसेनी व्याकरणसम्मत हैं और णमोकार मन्त्र क्यों दिगम्बरों द्वारा मान्य है? पाठक विचार करें।

'णमो अर (अरि) हंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

उक्त मूलमन्त्र जैनियों के सभी सम्प्रदायों में मान्य है। प्रायः अन्तर केवल 'न' और 'ण' का है। जहाँ दिगम्बरों में 'णमो' प्रचलित है, वहीं श्वेताम्बरों में प्रायः 'नमो' बोला जाता है। व्याकरण मान्यता वालों की दृष्टि से देखा जाए तो उनकी दृष्टि में **जितने भी प्राकृत व्याकरण हैं, उनमें 'संस्कृत शब्दों से प्राकृत बनाने के नियम दिये हैं'** (**प्राकृत विद्या**, ६/३) के अनुसार। ऐसा शौरसेनी व्याकरण का कौन सा सूत्र है जो 'न' को 'ण' कर देता हो? अन्य प्राकृतों में तो 'न' को 'ण' करने के हेमचन्द्र के सूत्र 'वाऽऽदौ' ८/१/२२९ और 'नो णः' ८/१/२२८ और **प्राकृत प्रकाश** का सूत्र 'नो णः सर्वत्र' २/४२ हैं। क्या शौरसेनी पक्ष व्यामोहियों को इनका हस्तक्षेप स्वीकार है?

'आइरियाणं' शब्द संस्कृत के 'आचार्य' शब्द से बना है। शौरसेनी के विशेष सूत्रों में ऐसा कौन-सा सूत्र है जो 'चा' को 'इ' में बदल देता है? अन्य प्राकृत नियमों में हेमचन्द्र का 'आचार्ये चोऽच्च' ८/१/७३ सूत्र है जो 'चा' को 'इ' में बदल देता है। क्या शौरसेनी में इसका दखल स्वीकार है?

तीसरा शब्द 'लोए' है (जिसे 'लोगे' भी बोला जाता है)। क्या शौरसेनी में 'क' को 'ग' करने का कोई सूत्र है? हाँ, अपभ्रंश

में **'अनादो स्वरादनुक्तानां क ग त थ प फां ग घ द ध बभाः** (हेम. ८/४/३९६) सूत्र अवश्य है जो 'क' को 'ग' कर देता है। क्या शौरसेनी में उसका दखल स्वीकार है? व्याकरण के नियमों से 'लोये' बनने का तो प्रश्न ही नहीं। यतः लुप्त व्यंजन के स्थान पर 'य' श्रुति होने का विधान वहीं है जहाँ लुप्त व्यंजन के पूर्व में 'अ' या 'आ' हो, (देखें, हेम. ८/१/१८० **'अवर्णो य श्रुति'**)। यहाँ तो लुप्त वर्ण से पूर्व 'ओ' है।

चौथा शब्द 'साहूणं' है, जो संस्कृत के 'साधु' शब्द से निष्पन्न है। क्या शौरसेनी में कोई सूत्र है जो 'ध' को 'ह' में बदल देता हो? अन्य प्राकृतों में तो हेमचन्द्र का सूत्र 'ख घ थ ध भाम्' ८/१/१८७ है जो 'ध' को 'ह' में बदल देता है। क्या उक्त रूपो में शौरसेनी वालों को उक्त सूत्रों के दखल स्वीकार हैं? यदि हाँ, तो भाषा मिश्रित हुई, और नहीं, तो शौरसेनी के स्वतन्त्र नियम कौन-से हैं जो वैयाकरणों ने विशेष रूप में दिये हों? उक्त विषय में विचार इसलिये भी जरूरी है कि उक्त मन्त्र को सभी जैन सम्प्रदाय वाले मान्य करते हैं और शौरसेनीकरण की मुहिम के कारण यह मन्त्र विवाद में पड़ने वाला है। आगे चल कर हमारे बच्चे यह न कहने लगें कि चूँकि दिगम्बरों की भाषा शौरसेनी है और णमोकार मंत्र शौरसेनी में नहीं है अतः हम इसे क्यों बोलें?, क्यों श्रद्धा करें?, आदि-आदि प्रश्न शौरसेनी की जबरन मुहिम के कारण उठने की सम्भावना है।

श्वेताम्बर मुनि गुलाब चन्द निर्मोही ने **तुलसी-प्रज्ञा** के अक्टूबर-दिसम्बर ९४ के अंक में पृष्ठ १९० पर लिखा है—'जैन तीर्थंकर प्राकृत अर्धमागधी में प्रवचन करते थे उनकी वाणी का संग्रह आगम ग्रन्थों में ग्रथित हुआ है। श्वेताम्बर जैनों के आगम .....अर्धमागधी भाषा में रचित हैं। दिगम्बर जैन साहित्य षट्खण्डागम, कसायपाहुड, समयसार आदि शौरसेनी में निबद्ध हैं'। इसी लेख में पृ० १८२ पर उन्होंने व्याकरण रचयिता काल (भाषा-भेदकाल) भी दिया है जिसका प्रारम्भ २री-३री शताब्दी दिया है। यह सब दिगम्बर आगमों को तीर्थंकरवाणी वाह्य और पश्चाद्वर्ती

सिद्ध करने के प्रयत्न हैं। **श्वेताम्बर तो यह चाहते ही हैं कि दिगम्बरों में शौरसेनी विधिवत् महिमामण्डित हो क्योंकि इससे उनके अभीष्ट की सिद्धि होगी। दिगम्बरों में शौरसेनी की बलात् स्वीकारोक्ति के प्रति बढ़ता दबाव कालिदास की याद दिलाता है जो जिस डाल पर बैठे थे उसी को काट रहे थे** और ये शौरसेनी के पक्षधर भी पूर्वाचार्यों को झुठलाकर श्वेताम्बर मत की पुष्टि कर रहे हैं, जबकि हमारे आगम गणधरवाणी दृष्टिवाद से उद्भूत हैं और उनके पश्चाद्वर्ती कोरी वाचनाओं से उत्पन्न हैं। यदि इस मुहिम को तुरन्त शांत नहीं किया गया तो यह **शौरसेनी की छोटी-सी गाँठ कैन्सर का रूप धारण करने वाली है,** हालांकि अनेकों डाक्टर उसे कैन्सर के बीभत्स स्वरूप होने से बचाने में जी जान से जुटे हुए हैं। काश वे सफल होते, लेकिन हठधर्मिता सबसे बड़ी बाधा है। हालांकि पुरस्कार की प्रत्याशा में अनेक वरिष्ठ और गरिष्ठ विद्वान् पंक्तिबद्ध कतार में खड़े होंगे। पुरस्कृत जिन डॉ० सा० से शौरसेनी भाषा के मूल होने की पुष्टि कराई थी वे लाडनूं की 'प्राकृत भाषा संगोष्ठी' में उक्त स्वीकृति से सर्वथा मुकर गये और उन्होंने कहा कि **आचारांग, सूत्रकृतांग और दशवैकालिक** में अर्धमागधी भाषा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। डॉ० शशि कान्त जैन ने भी **शोधादर्श** अंक ३६ पृष्ठ २९१ पर ठीक ही लिखा है "……जून १९९५ में शौरसेनी प्राकृत को ही मूल प्राकृत सिद्ध करने की हठधर्मिता ने श्वेताम्बर आम्नाय के साधु और विद्वानों को अर्धमागधी (जिसमें श्वेताम्बर आगम निबद्ध हैं) को प्राचीनतर और महावीर की मूल प्राकृत सिद्ध करने में लामबन्द कर दिया।"

निःसन्देह डॉ० टाटिया की चाल काम कर गई। उन्होंने इन्हें शौरसेनी में समर्थन दिया ताकि ये इसमें दृढ़ रहें—और श्वेताम्बर आगम पूर्ववर्ती सिद्ध हों। बस, उनका काम हो गया और लाडनूं जाकर वे वचनों से बदल गये और ये शौरसेनी के गीत गाते रहे, जिसका परिणाम ये बदलता कैन्सर है।

वस्तुस्थिति को नकारने की हठधर्मिता का भयावह रूप अब सामने आने लगा है। लोगों ने सर्वज्ञ वाणी से परम्परित गुम्फित

आगमों को शिलालेखों जैसे अस्पष्ट आधारों से प्रमाणित करना शुरू कर दिया है। कुछ दिन पहले हमें एक लेख संपादक, तुलसी-प्रज्ञा, का मिला था, जिसमें खारवेल के शिलालेख से आगमिक 'न' और 'ण' की स्थिति का उल्लेख था। हमने सम्पादक महोदय को लिखा कि सभी के आगम सभी को स्वत: प्रमाण होते हैं—आगमों को पर से प्रमाणित करने की बात आगमों में अश्रद्धा करना है। आदि। हम ठीक नहीं समझते कि अल्पज्ञ से सर्वज्ञ की वाणी को प्रमाणित कराया जाए जैसा कि चलन बन गया है। काश! मान लें कि खारवेल सर्वज्ञ थे और उनकी वाणी शिलालेख पर ठीक से उत्कीर्ण हुई है तो टंकित सवसिधानं को भी मान्यता देकर हमारे प्रचलित मन्त्र में उक्त पद मान लेना चाहिए पर ऐसा सम्भव नहीं। इसे न श्वेताम्बर स्वीकारेंगे और न दिगम्बर। आखिर अपने-अपने ढंग में उक्त मन्त्र दोनों का है। किसी खास भाषा या व्याकरण से इसका सम्बन्ध नहीं—यह तो अभेद प्राकृत का है, किसी विभक्त एक भाषा का नहीं, और यही भाषा जिसे अर्धमागधी कहा जा रहा है दिगम्बर आगमों की भाषा है। वही हमें स्वीकार है और इससे ही हमारे परम्परित पूर्वाचार्यों में हमारी श्रद्धा जगती है।

——

MAN - MADE GOD

—Sri Kailash Bhushan Jindal

More than half the world believes without question, or argument, that "God created man in his own image," as said in the **Book of Genesis**, ch. 1, verse 27. Cool consideration will, however, show that it was man who created God in his own image. The gods of the Greeks were conceived as finite beings, differing from human beings only in degree. They lived in Olympus and thought and acted like any one of us. Only, they thought more rationally and acted more wisely. They were deified ancestors or apotheosized men. The incarnated gods of the Hindus were also human beings. There was nothing supernatural about Rama. He was the essence of all that is best and noble in man.

As long as religion is a matter of individual conscience, and as long as no priestly caste comes in between God and man, God will continue to be like us. Each has his own God and conceives Him after his own fashion. And since most of us are similar in physiognomy our God tends to be one.

The Church Fathers of the middle ages created a great gulf between God and man. They made Him a deity and took Him away from us as our brother-man. They imputed to Him the whole creation of the universe, and also of man. There is much to fear from Him. People cease to do wrong not because their higher self impels them to do so but because there is somewhere some mute glorious power that is their arbiter. They work lest the talent lodged with them may go useless and God "returning chide." As Greene put it, "The eternal self-cons-

ciousness communicates to human consciousness the idea of social good."

It is profoundly interesting to find Shelley, laying down, a century ago, quietly in his room, the laws by which modern scholars govern themselves. His "Essay on Christianity" is a blow directed against the popular and orthodox form of religion, as corrupted by churches into a despotism. He speaks of Christ as an historical character and as a man. To bind him up with miracle is to enfeeble his influence. When the miraculous elements are left out, Jesus Christ remains, not indeed a deity, but a lover of humanity. Shelley's "Necessity of Atheism" sets abroad the spirit of free intellectual inquiry. The spirit of science, philosophy and geology questions the existence of God. That earth was the result of millions of years of formation, is more reasonable than that God made earth in six days. Engrossed in the problem of personel immortality, Tennyson and Browning reach a compromise in 1860. That compromise is embodied in three lines:

Nothing worth the proving can be proven
Nor yet disproven, therefore thou be wise
Cleave ever to the sunnier side of things.

For every individual the world is his own idea of it. The reality is not to be found in any intellectual theory but in the blind impulses of man. This is the "Pathetic symphony of the Nineteenth Century", and Hardy uses it to prove that God is a figment of imagination, a mere make-belief. All his life Hardy was much troubled by the questions of good and evil, and how it should be that evil was permitted by Deity who could presumably have so

easily checked it. Because there is sin and evil in this world, God has not created it for He could not be such an incompetent architect as to despoil his own creation:

Are God and Nature at strife
That Nature sends such ugly dreams ?
So careful of the type she seems
So careless of a single life.

Thus God ceases to be our Redeemer, our King of Kings, our Heavenly Father. He has not made the Universe and so could not have "created man in his own image." It is man's infirmity to refuse to be satisfied with evolution. He demands a ruddier presentation of the sum of his experience. To nature and law, he prefers Destiny and God. Where reason fails he reduces every phenomenon, every circumstance to some suitable miseenscene. Since the child has been brought up in the belief that there is some supernatural power who controls his and his parents' destinies, we can very well imagine the child's query as to what this power is like. And the child pictures God to something after his own shape. This is the inherent psychology when we pronounce that "God created man in his own image."

Of all human institutions, religious beliefs and practices are the most tenacious. But they, too, must change with the changing times. The note of disillusionment has been struck by Schopenhauer, and we cannot raise the child's faculty of make-belief to the nth power. We are all the while conscious that God is our own creation and still we continue to say that God created us. We must march back through centuries and tear a page from the Greek history. At best we can regard God as super-man, a super-soul, a PARAMATMA. Man is his self-redeemer. He is God himself. The Jivatma will one day become Paramatma for "God in Man is one with Man in God". ★

शोधसार

पं० राजमल्ल कृत पञ्चाध्यायी में प्रतिपादित जैन दर्शन

—डॉ० (श्रीमती) मनोरमा जैन

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पी-एच०डी० के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध; निर्देशक : डा० कमलेश कुमार जैन)

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कविवर पं० राजमल्ल जी द्वारा संस्कृत भाषा में विरचित **पञ्चाध्यायी** एक जैन आध्यात्मिक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार इसे पांच अध्यायों में पूर्ण करना चाहते थे इसीलिये इसका नाम **पञ्चाध्यायी** रखा था, परन्तु असमय में ही स्वर्गवास हो जाने के कारण वे इसे पूर्ण नहीं कर सके। वर्तमान में इस ग्रन्थ का जितना अंश प्राप्त है उसे करीब डेढ़ अध्याय माना जाता है। ग्रंथकार ने प्रथम अध्याय की समाप्ति और द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ होने का कोई संकेत नहीं दिया है। द्वितीय अध्याय जिसमें **११४१** श्लोक हैं, अपूर्ण है, और इसमें इन्होंने अपनी **लाटी-संहिता** के १४०९ पद्यों में से ४१३ पद्य ज्यों के त्यों आत्मसात कर लिए हैं। प्रथम अध्याय में ७६८ श्लोक हैं। इस तरह कुल मिलाकर ७६८ + ११४१ = १९०९ श्लोक हैं। इसके अतिरिक्त ७ 'पद्य उक्तं च' शब्द प्रयोग करके पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रमाणस्वरूप उद्धृत हैं।

प्रारम्भ में ग्रन्थकर्ता अज्ञात था क्योंकि ग्रन्थकार ने कहीं भी अपना नामोल्लेख नहीं किया है। पं० मक्खन लाल जी ने सर्वप्रथम **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** के कर्ता अमृतचन्द्राचार्य को इसका कर्ता बतलाया था। बाद में जब इनकी **लाटी-संहिता** मिली और उसकी ४१३ गाथाओं का **पञ्चाध्यायी** में समावेश देखा तो पं० जुगल किशोर मुख्तार ने इसका कर्ता कविवर पं० राजमल्ल जी को सिद्ध किया और वीर पत्र में अपने विचारों को प्रकाशित कराया।

लाटी-संहिता की प्रशस्ति से तथा इनकी अन्य रचनाओं से जो जानकारी मिलती है उससे विदित होता है कि राजमल्ल जी काष्ठासंघी माथुरगच्छी पुष्करगणी दिगम्बर भट्टारक हेमचन्द्र की

आम्नाय के विद्वान थे। आपका प्रमुख निवास स्थल जयपुर के पास वैराटनगर रहा, बाद में मथुरा और आगरा से सम्बन्ध जुड़ा। मातृभाषा ढूँढारी हिन्दी रही। मुगल सम्राट अकबर (राज्यकाल १५५६-१६०५ ई०) के दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त करने वाले साहू टोडर सार्थवाह (**जम्बूस्वामीचरितम्** काव्य-रचना के प्रेरक) तथा साहू फामन सार्थवाह (**लाटी-संहिता** की रचना के प्रेरक) के काल में आपने अपनी साहित्य साधना की थी। **जम्बू-स्वामीचरितम्** और **लाटी-संहिता** में आपने मुगल सम्राट बाबर, हुमायूँ तथा अकबर के सम्बन्ध में विस्तृत ऐतिहासिक जानकारी दी है। इनकी कृतियों में राष्ट्रकूट, चालुक्य, तोमर और मुगल राजाओं के राजनैतिक इतिहास के साथ तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक तथ्यों को खोजा जा सकता है। अतः इनका समय वि० सं० १६०२-१६५६ (१५४६-१५९९ ई०) रहा होगा।

इनकी रचनायें हैं—**जम्बूस्वामिचरितम्, छन्दोविद्या, लाटी-संहिता, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, समयसारकलश** की ढूँढारी हिन्दी भाषा टीका तथा **पञ्चाध्यायी**। **तत्वार्थसूत्र** पर भी आपकी टीका थी ऐसा कुछ विद्वानों का कहना है परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं है। इसी तरह **लाटी-संहिता, स्वोपज्ञ टीका** और स्याद्वाद सम्बन्धी गद्य रचना भी अप्राप्त हैं।

कविवर की अन्तिम रचना **पञ्चाध्यायी** है जिसमें उन्होंने चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है। इस ग्रन्थ की रचना में आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र और उमा-स्वामि की रचनायें विशेष रूप से आदर्श रही हैं। अतः ग्रन्थकार ने इनके प्रति किसी न किसी रूप में सम्मान भी प्रकट किया है। दिगम्बर मूलसंघोय जैन आगम-परम्परा आज कुन्दकुन्द-आम्नाय के नाम से प्रसिद्ध हैं और कविवर राजमल्ल जी इसी परम्परा के पोषक हैं। यद्यपि आपने मुनि दीक्षा नहीं ली थी, गृहस्थ ही थे, परन्तु श्रुत-परम्परा के विकास में आपकी गणना आचार्यतुल्य प्रभावशाली काव्यकार एवं लेखक के रूप में की जाती है।

कवि ने **पञ्चाध्यायी** की रचना अपने दीर्घकालीन अभ्यास, मनन और अनुभव के बाद जीवन के उत्तरकाल में की है। इसमें जैन दर्शन के प्रायः सभी सिद्धान्त समाहित हैं। कवि की यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्र की रचनाओं का अविकल मन्थन करने के बाद उनका सार इसमें कवि ने समाहित करना चाहा है। कुन्दकुन्दाचार्य के **प्रवचनसार** का अनुकरण करते हुए **पञ्चाध्यायी** का मंगलाचरण उसी शैली में कवि ने किया है। पूर्वाचार्यों का अनुकरण करते हुए भी कवि ने स्वानुभव से कई स्थानों पर नवीन व्याख्यायें भी दी हैं जो विचारयोग्य हैं। अध्यात्म नय विवेचन तथा सम्यक्त्व की प्ररूपणा में कवि ने अद्भुत कौशल दिखाया है।

ग्रन्थ लिखने का अन्तरंग प्रयोजन था 'लेखक का विशुद्धतर आत्मपरिणाम' तथा विशुद्धतर आत्मपरिणाम का भी हेतु था 'सबका उपकार करने वाली सुबुद्धि'। विषय को सुगम करने के लिए स्थल-स्थल पर अनेक उपमाओं तथा कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है तथा कई बार विषय को स्पष्ट करने के लिये पुनः-पुनः कथन किया है। कवि पहले सामान्य वस्तु (धर्मी) का विवेचन करते हैं, पश्चात् धर्मविशिष्ट वस्तु का।

ग्रन्थकार ने सत्, वस्तु, द्रव्य, पदार्थ आदि को पर्यायवाची कहा है। इससे यह भी सिद्ध है कि गुण, पर्याय और द्रव्य ये तीनों पृथक-पृथक नहीं हैं अपितु इनमें भी अपेक्षाभेद से भेदाभेदत्व माना जाता है। कभी भी पृथकता सम्भव न होने से निश्चयदृष्टि (निश्चय नय) की अपेक्षा परस्पर अभेद है और नामादि-भेद-व्यवहार होने से व्यवहारदृष्टि (व्यवहार नय) की अपेक्षा परस्पर भेद है। इन्हीं कारणों से **पञ्चाध्यायी** में उत्पादादित्रय में अविनाभाव सम्बन्ध बतलाया है। गुण अन्वयी हैं और पर्यायें व्यतिरेकी हैं। गुण-पर्याय को अर्थपर्याय कहते हैं और द्रव्यपर्याय को व्यञ्जन-पर्याय कहते हैं। जिस तरह वस्तु में उत्पादादित्रयात्मकत्व माना जाता है उसी तरह उसमें परस्पर-विरोधी अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि धर्मों

को भी अपेक्षाभेद से स्वीकार किया जाता है। गुणों में गुणांश की और द्रव्य में द्रव्यांश की भी कल्पना इसी अपेक्षाभेद के सिद्धान्त से की जाती है। जिस प्रकार द्रव्य और गुण में उत्पादादित्रयात्मकत्व है उसी प्रकार पर्यायों में भी उत्पादादित्रयात्मकत्व है। इसीलिए ग्रन्थकार ने पर्यायों को अनित्य के साथ कथञ्चित् ध्रौव्यात्मक भी कहा है।

द्रव्य का स्वरूप जानने के बाद जिज्ञासा होती है कि ऐसे कितने द्रव्य हैं जिनसे संसार की रचना हुई है? इसके उत्तर में छः द्रव्य स्वीकार किये गये हैं—जीव (आत्मा), पुद्गल (रूपी जड़), धर्म (गतिहेतुक), अधर्म (स्थितिहेतुक), आकाश और काल। ईश्वर को यहाँ स्वीकार नहीं किया गया है अपितु मुक्त जीवों को ही ईश्वर कहा गया है। **पञ्चाध्यायी** में जीव को छोड़ कर शेष द्रव्यों का मात्र सामान्य परिचय मिलता है।

जीव का विचार करते समय उसे ज्ञान और दर्शन स्वभावी बतलाया गया है। ज्ञान के साथ अविनाभाव सम्बन्ध से रहने वाले सुख को भी आत्मा का विशेष गुण कहा गया है। ज्ञान, दर्शन और सुख ये गुण वहीं सम्भव हैं जहाँ चेतना (चैतन्य) हो। इसीलिये 'चेतना' को जीव का लक्षण बतलाया है। चेतना तीन प्रकार की है—ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना। ज्ञानचेतना शुद्ध-चेतना है। कर्मचेतना और कर्मफलचेतना अशुद्धचेतना हैं। संसारी जीव कर्मबन्धन से बद्ध है जिससे उनके कर्मनिमित्तक राग-द्वेष-मोह आदि अनेक प्रकार के भाव (आत्म-परिणाम) होते रहते हैं और उनकी चेतना अशुद्धचेतना या अज्ञानचेतना कहलाती है। उन संसारी जीवों की ज्ञानचेतना मानी है जिन्हें सम्यक्त्व (आत्मबोध) की प्राप्ति हो गई है।

आत्मा यद्यपि शुद्ध ज्ञानचेतना वाला है, परन्तु उसमें एक स्वतःसिद्ध वैभाविकी शक्ति भी है जो राग-द्वेषरूप निमित्त पाकर आत्मा में विभावरूप (अशुद्ध) परिणमन करा देती है। विभाव-रूप परिणमन के कारण संसार समुद्र में परिभ्रमण होता रहता है।

इसीलिये वेदान्त की तरह जैनदर्शन में सर्वदा शुद्ध आत्मा को नहीं माना गया है। मुक्त होने पर ही उसे शुद्ध कहा है। संसारावस्था में जीव कर्मबद्ध रहता है, अतः कर्मों के उपशम, क्षय आदि की अपेक्षा उसके पाँच भाव होते हैं—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक (कर्मों का फलोन्मुख होना) और पारिणामिक (कर्मनिरपेक्षस्वाभाविक भाव)। इनके अवान्तर त्रेपन भेद होते हैं। इनमें से औदयिक भावों के गति आदि २१ भेदों का पञ्चाध्यायी में विस्तार से वर्णन है। औदयिक भावों के होने पर ही कर्मबन्ध होता है। सभी तरह का कर्मबन्ध दुःख का कारण है। रागादि की तीव्रता और मन्दता से कर्मफल में तीव्रता और मन्दता आती है।

कर्म आठ प्रकार के हैं—(१) ज्ञानावरणीय (ज्ञान गुण का प्रतिबन्धक), (२) दर्शनावरणीय (दर्शनगुण का प्रतिबन्धक), (३) वेदनीय (सुख-दुख का वेदक), (४) मोहनीय (मोहोत्पादक, आत्मबोध एवं चारित्र-प्रतिबन्धक), (५) आयु (जीवनकाल), (६) नाम (शरीराङ्गोपाङ्ग निर्माण में कारण), (७) गोत्र (उच्च-नीच का मापक), और (८) अन्तराय (दान-लाभ आदि में प्रतिबन्धक)। मोहनीय के दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय तथा अनन्तानुबन्धी कषायों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने पर आत्मा का सम्यक्त्व गुण प्रकट होता है और जिसे सम्यक्त्व गुण (आत्मबोध) प्रकट हो जाता है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। सम्यग्दृष्टि की चेतना ज्ञानचेतना कहलाती है। अतः ज्ञानचेतना ही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। सम्यग्दृष्टि के सराग और वीतराग ये जो दो भेद किये जाते हैं उससे ग्रन्थकार सहमत नहीं हैं क्योंकि सम्यग्दृष्टि इच्छारहित होते हैं। 'तत्त्वश्रद्धान', 'आत्मानुभव' आदि को जो सम्यक्त्व का लक्षण पूर्वाचार्यों ने बतलाया है उसे ग्रन्थकार सम्यग्दृष्टि के बाह्य चिन्ह मानते हैं, लक्षण नहीं, क्योंकि 'तत्त्वश्रद्धान' आदि ज्ञान की पर्यायें हैं। इसी तरह प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये चार गुण जो सम्यग्दृष्टि के प्रसिद्ध हैं, बाह्यदृष्टि से सम्यक्त्व के लक्षण हैं। संवेग,

निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये जो सम्यक्त्व के आठ गुण प्रसिद्ध हैं, इनके सम्बन्ध में ग्रन्थकार का मत है कि संवेग, उपशम, अनुकम्पा, निर्वेद तो पूर्वोक्त प्रशमादि रूप हैं, तथा शेष निन्दा आदि चार गुण सम्यक्त्व के मूल गुण नहीं हैं अपितु सम्यक्त्व के उपलक्षण (लक्षण के लक्षण) हैं। निःशंकित आदि सम्यग्दर्शन के प्रसिद्ध आठ अंगों को यहाँ सम्यक्त्व के गुण कहा है। इसके अतिरिक्त यह भी सप्रमाण सिद्ध किया है कि सम्यक्त्व गुण निर्विकल्प होता है, सविकल्पक नहीं। ग्रन्थकार के अनुसार सम्यग्दृष्टियों को जो स्वात्मानुभव होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। इस तरह सम्यग्दृष्टि का स्वात्मानुभव रूप मतिज्ञान मनःसापेक्ष होकर भी प्रत्यक्ष होता है तथा शेष पर पदार्थ विषयक ज्ञान परोक्ष होता है। अवधि ज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान जो इन्द्रिय और मनःनिरपेक्ष माने जाते हैं उन्हें ग्रन्थकार ने इन्द्रियनिरपेक्ष तो माना है परन्तु मनःसापेक्ष माना है। शेष ज्ञान-सम्बन्धी विवेचन पूर्वाचार्यों के समान है।

ग्रन्थकार ने नयों का विस्तार से विवेचन किया है तथा कई नवीन व्याख्यायें दी हैं जो विचारणीय हैं। नय श्रुतज्ञान का वचनात्मक रूप है। ग्रन्थकार ने निश्चय नय के शुद्ध और अशुद्ध विभाजन को भी मिथ्या कहा है। इसी प्रकार अनेकान्त-सिद्धान्त की भी अभिनव व्याख्या की है। अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, नित्य-अनित्य आदि परस्पर-विरोधी धर्मों का एक वस्तु में रहना ही अनेकान्त है, परस्पर-अविरोधी अनेक धर्मों का रहना अनेकान्त नहीं है। परस्पर-अविरोधी धर्मों की एकत्र स्थिति तो एकान्तवादी भी मानते हैं। जिस किसी तरह अनेकान्त की व्याख्या करना उस सिद्धान्त का उपहास है। इसी क्रम में स्याद्वादसिद्धान्त, सप्तभंगी और निक्षेप का भी विवेचन आया है।

ग्रन्थ का मुख्य लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है जिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्र में

सम्यक्पना आता है। अतएव सम्यक्त्व का बड़ा महत्त्व है, परन्तु जब तक सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होगा तब तक मोक्ष नहीं मिल सकता है। सम्यक्चारित्र के प्रसंग में गृहस्थ और साधु के चारित्र का वर्णन किया गया है। दोनों के मूल में एक ही प्रकार का चारित्र या धर्म है। गृहस्थ जिस अहिंसा आदि का पालन स्थूलरूप से करता है साधु उसी का सूक्ष्मरूप से पालन करता है। अहिंसा-भाव बिना वीतरागता के सम्भव नहीं है। अतः जैसे-जैसे वीतरागता-रूप-चारित्र वृद्धि को प्राप्त करता है वैसे-वैसे जीव गुण-स्थान क्रम से ऊपर चढ़ता जाता है। जब वह चारों घातिया कर्मों का क्षय कर देता है तो जीवन्मुक्त (अर्हन्त) हो जाता है और उसमें आत्मा के स्वाभाविक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख गुण प्रकट हो जाते हैं। अन्त में जीवन्मुक्त आयु के पूर्ण होने पर शरीर त्याग कर विदेहमुक्त हो जाता है। उसके समस्त आठों कर्म नष्ट हो जाते हैं और अपुनरागमनरूप अनन्त ज्ञान-सुख-दायिका मुक्ति उसे प्राप्त हो जाती है। इस तरह आत्मा से परमात्मा बनने का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है।

——

बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है

—श्री राजीव कान्त जैन

अब न भटकेंगे डगर
अब न कोई अगर-मगर
न बन्दर भभकियों का डर
संकल्प अटल लिये निडर
सबको बस साथ बढ़ते जाना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .१.

उपग्रह हमने छोड़े
'परम' गणक जोड़े हैं
मिसाइल हमारी अपनी
परमाणु बम परीक्षण को फोड़े हैं
तकनीक हमारी शक्ति, विकास लाना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .२.

न हमारा वैर किसी से
नहीं किसी को सताना है
अहिंसाचारी हम प्रेमपुजारी
पर ले न कोई मतलब और
दुनिया को बस ये जताना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .३.

मग पर डग
अब न हों डग-मग
पुरानी गति पर नहीं संतोष
नौ दिन न चलें अब अढ़ाई कोस
रफ्तार को हमें और बढ़ाना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .४.

शत्रु नहीं केवल बाहर
मेड़ भी खेत खाती है
रिश्वत की मुर्गी बेइमानी सेती है
भ्रष्ट सब शय को मिटाना है
भ्रष्टाचार की हर दीवार गिराना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .५.

शहीदों तुम्हें नमन
आजाद अपने धरा-गगन
बापू का वतन, सुभाष-सपन
हमें सच कर दिखाना है
स्वतन्त्र सांसों का कर्ज चुकाना है
बहुत चले, अभी पर बहुत जाना है
हिन्दोस्तां सारे जहाँ से अच्छा बनाना है .६.

(२६-१-१९९९)

——

अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे

–श्री वीरेन्द्र अंशुमाली

व्यथा परायी, जब तुम, अंगीकार करोगे,
अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे।

किस्तों में, तिल-तिल जीना-मरना, मजबूरी है,
सुधा बाँटने को विष पीना बहुत जरूरी है।
अश्रु बीन, यदि खुशियों का विस्तार करोगे,
अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे।

कोई बड़ा न छोटा, सबका समय बदलता है,
नीचे-ऊपर निठुर काल का, पहिया चलता है।
वीणा में यदि युग का हाहाकार भरोगे,
अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे।

यहाँ किसी को धरा, किसी को गगन नहीं मिलता,
कितना चाहो फिर भी पूरा चमन नहीं मिलता।
औरों के घायल मन को जब प्यार करोगे,
अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे।

लक्ष्य प्राप्ति पर संकल्पों की आज्ञा चलती है,
अगर प्रयास करें तो नियति लकीर बदलती है।
करुणा-बिरवे बो, वश में संसार करोगे,
अपनी पीड़ा का भी तुम उपचार करोगे।

——

विचार-बिन्दु

जैन पंथोपपंथी बांधव अपनी भूमिका पर विचार करें

—श्रीमती वासंती शाह

भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रारम्भ से जैनधर्म का अन्तर्भाव, अल्पसंख्यक धर्मों की सूची में किया गया था। किन्तु नरसिंह राव शासन ने १९९३ में उसे सूची से अलग करने का अनुचित कार्य किया।

उस पर दक्षिण भारत जैन सभा की ओर से केन्द्रीय समाज कल्याण मन्त्रालय को प्रतिनिधि मण्डल के माध्यम से प्रार्थना पत्र दिये गये, परन्तु कोई परिणाम न निकलने पर सभा के प्रतिनिधि श्री बाल पाटील द्वारा मुम्बई उच्च न्यायालय में केन्द्र शासन के विरुद्ध दि० २०-१०-१९९६ को याचिका दाखिल की गई जिसमें ऐतिहासिक आधारों एवं प्रमाणों के बल पर जैनियों की हिन्दुओं से स्वतन्त्र एवं अलग पहचान के तथ्य प्रस्तुत किये गये।

शासन की ओर से न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रतिशपथपत्र में ३-९-१९९७ को उन ९४ प्रतिवेदनों की सूची प्रस्तुत की गई जो जैन धर्म को अल्पसंख्यक श्रेणी में सम्मिलित करने के विरोध में थे और उनमें जैन पंथोपपंथों के मन्दिर, ट्रस्ट, संस्था और स्थानक के ट्रस्टी, खासदार, आमदार आदि भी शामिल थे। दक्षिण भारत जैन सभा की याचिका परिणामतः खारिज कर दी गयी। अब ११ न्याय-मूर्तियों की खण्डपीठ अल्पसंख्यक धर्मों की परिधि में समाविष्ट करने के मापदण्डों पर नये सिरे से विचार कर रही है।

जैन धर्म को अल्पसंख्यक भारतीय धर्मों की सूची से हटाने पर कांग्रेस सरकार द्वारा तर्क दिया गया कि आचार-विचारों में महती समानता के कारण जैन हिन्दू ही हैं। किन्तु इस पहलू पर जैनों से राय नहीं ली गयी, और संविधान के प्राविधान के विपरीत इस परिवर्तन का जैन धर्मियों को एक वर्ष तक आभास भी नहीं हुआ।

वास्तविकता यह है कि सिख और बौद्ध धर्म जैनधर्म की अपेक्षा हिन्दू धर्म से अधिक सादृश्य रखते हैं। बुद्ध को हिन्दुओं ने

विष्णु का दशम अवतार माना है। सिख कुटुम्ब में सिर्फ एक लड़के को सिख बनाया जाता है और अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर को हरमन्दिर कहा जाता है। इस दृष्टि से प्रथमत: बौद्ध और सिख धर्मों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित करना अधिक तर्क संगत होता। जैन धर्म के प्रति इस अन्याय को राव शासन ने भी महसूस किया प्रतीत होता है और इसी कारण शासन ने यह कार्य गोपनीयता से किया।

इस अन्याय के विरोध में दक्षिण भारत जैन सभा ने पहल की। दक्षिण भारत जैन सभा की नींव और विस्तार महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद (दिल्ली) के साथ सम्पर्क करने पर, उनसे समाज कल्याण मन्त्रालय से साक्षात्कार कर आवेदन प्रस्तुत करने मात्र तक का सहयोग प्राप्त हुआ। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय का दरवाजा खट-खटाने को वह तैयार नहीं थे। शायद इसलिये कि उत्तर भारत में स्थित दिगम्बर जैन समाज व्यापार एवं उद्योग में लगा होने के कारण शासन से प्राप्त सुविधाओं में व्यवधान नहीं चाहता था। इसी कारण अखिल भारतीय कहलाने वाली किसी अन्य संस्था या व्यक्ति ने भी दक्षिण भारत जैन सभा का साथ नहीं दिया।

जैन समाज अहिंसावादी एवं शाकाहारी के रूप में पहचाना जाता है। शाकाहार जैन धर्म का मौलिक परिचय देने वाला प्रमुख पहलू है जिसे सभी विपरीत परिस्थितियों में भी जैनियों ने संजोया है। किन्तु आप खुशी से या शासकीय दबाव के कारण या न्यायालयों के निर्णय के फलस्वरूप यदि जैनधर्म हिन्दू धर्म के साथ विलीन हुआ तो उस की अस्मिता एवं शाकाहार की प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी।

जब किसी धर्म को कुण्ठित करने का षड्यन्त्र किया जाता है तब उसकी प्रमुख पहचानों को मिटाने के प्रयास होते हैं और उसके पूजा स्थान एवं सांस्कृतिक अस्मिता को नष्ट करने का पैंतरा अपनाया जाता है ताकि अगली पीढ़ी के समक्ष अपने पुरखों के धर्म एवं संस्कृति की पहचान बाकी न रहे। मुस्लिम शासकों ने यही नीति अपनायी थी। उनका आक्रमण केवल राजनैतिक या मात्र भारत

के विरोध में न होकर दुनिया के विभिन्न देशों के धर्म एवं संस्कृति के खिलाफ था। जरथुष्ट धर्म की पहचान व सुरक्षा, केवल भारतीयों द्वारा पारसियों को संरक्षण प्रदान करने के कारण ही बच पायी।

अल्पसंख्यक धर्मों की सूची से अलग किये जाने का गम्भीर अन्वयार्थ जैन पंथोपपंथों के बन्धुओं के समझ में नहीं आता कि जैन नाम के साथ जैन धर्म एवं जैन संस्कृति का भी अस्त हो जाएगा।

यह क्षोभ और चिन्ता की बात है कि जैन धर्म के अस्तित्व की समस्या को लेकर भी जैन पंथोपपंथों में सामंजस्य और एक विचार नहीं हो पाया है। आज तक हम जैन धर्मी हिन्दुओं के साथ ही रहते आये हैं, किन्तु हमारी जैन धर्मी अस्मिता हमने संजोये रखी है। यदि वह जैन नाम ही मिट गया तो हमारे तीर्थ, मन्दिर, सामाजिक संस्थायें, शिक्षा प्रतिष्ठान, मन्दिरों के न्यास, शिष्य वृत्ति फण्ड तथा अन्य सम्पत्ति हिन्दुओं की मानी जाएगी—बिना किसी विध्वंस के, सिर्फ तख्तियां बदल कर। इसका उत्तरदायित्व हमारा ही होगा—सिर्फ हमारा।

प्रश्न उठता है कि जैन धर्म का समावेश अल्पसंख्यकों की सूची में न करने के प्रतिवेदनपत्र पर जिन जैन पंथोपपंथों के मन्दिर, ट्रस्टी, मुनी, धर्म स्थान के विश्वस्त, खासदार, आमदार आदि के नाम और पते हैं, उन्हें इतने महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने का अधिकार कैसे प्राप्त हुआ, किसने प्रदान किया ? जैन संस्कृति एक प्राचीन भारतव्यापी धर्म संस्कृति है और जब जैनधर्म के अस्तित्व ही का प्रश्न उठ गया है तो हर जैन व्यक्ति के मत की गिनती होनी चाहिये और सार्वमत से ही ऐसा कोई निर्णय लिया जाना चाहिए।

——

चिन्तन कण

निगंट्ठ नात्तपुत्त

–श्री अजित प्रसाद जैन

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ **दीघ निकाय** व **मज्झिम निकाय** में उल्लेख आया है कि एक बार जब शाक्य मुनि भगवान गौतम बुद्ध कुसीनारा में वर्षा वास कर रहे थे तो उनके चुन्द नामक उपासक ने उन्हें आकर सूचना दी कि आज प्रातः काल पावा में निगंठ्ठ नात्त पुत्त का शरीरान्त हो गया है……। प्राचीन जैन व बौद्ध वाङ्मय के अनन्य अध्येता आचार्य श्री नागराज जी, डी० लिट्०, के अनुसार 'निगंट्ठ' शब्द जैन श्रमणों के लिए तथा 'नात्त पुत्त' भगवान महावीर के अर्थ में जैन आगमों (श्वे०) में कई स्थलों पर उपलब्ध होते हैं तथा बौद्ध वाङ्मय में तो 'निगंठ्ठ नात्तपुत्त' भगवान महावीर के लिए अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

अपभ्रंश भाषा के यशस्वी कवि विबुद्ध श्रीधर (१२वीं शती विक्रम) ने अपनी कृत्ति **वड्ढमाण चरिउ** में भगवान महावीर के दीक्षा वन का नाम 'णाय षंड वन' लिखा है जिसका हिन्दी रूप उस ग्रन्थ के सम्पादक डा० राजा राम जैन ने 'नाग खण्ड वन' दिया है। अपभ्रंश भाषा के ही महाकवि रइधु ने अपनी कृति **सम्मई जिण चरिउ** (रचना काल-१४७० वि० सं० के लगभग) में, डा० राजा राम जैन के अनुसार, भगवान महावीर को 'ज्ञात' वंशी तथा उनके दीक्षा वन का नाम 'ज्ञात' खण्ड वन लिखा है। यह ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया, पर 'ज्ञ' अक्षर तो अपभ्रंश में प्रयुक्त होता नहीं, अतः यहां पर भी मूल शब्द 'ज्ञात' के स्थान पर 'णाय' ही होना चाहिए।

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपने ग्रन्थ **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा** प्रथम खण्ड, (प्रकाशन वर्ष-१९७४ ई०), में भगवान महावीर को इक्ष्वाकु वंशी काश्यप गोत्री तथा ज्ञातृ कुलोत्पन्न सूचित किया है। डा० भागचन्द 'भास्कर' ने भी अपने ग्रन्थ **भगवान**

महावीर और उनका चिन्तन (प्रकाशन वर्ष-१९७६) में डा० नेमिचन्द्र की उपर्युल्लिखित सूचना का समर्थन किया है। सुप्रसिद्ध पत्रकार लेखक श्री ज्ञानचन्द जैन ने भगवान महावीर की जीवनी पर अपनी कृति का नाम ही **निगंट्ठ ज्ञात पुत्त** (प्रकाशन वर्ष-१९७७ ई०) रखा है (यद्यपि प्राकृत-पालि-अपभ्रंश साहित्य में शब्द 'नात्तपुत्त' ही प्रयुक्त हुआ है, 'ज्ञातपुत्त' या 'ज्ञातृ पुत्र' नहीं।) डा० भास्कर ने तो 'ज्ञातृ' से ध्वनि साम्यता के आधार पर वर्तमान में वैशाली के आस-पास बसने वाली आदिवासी 'जथरिया' जाति को ज्ञातृ कुल क्षत्रियों का वंशज होने की सम्भावना भी व्यक्त की है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर के ज्ञातृ कुलोत्पन्न होने तथा उनके दीक्षा वन का नाम 'ज्ञात या नाग खण्ड वन' होने का अनुमान मूल शब्द 'णाय' के आधार से ही लगाया गया है। हमारे विचार में प्राकृत के शब्द 'णाय' पुत्त का हिन्दी-संस्कृत रूपान्तरण 'नाथ पुत्र' तथा 'णाय षंड वन' का 'नाथ खण्ड वन' होना अधिक समीचीन है।

भगवान महावीर के 'नात्तं पुत्त' सम्बोधन की सार्थकता—प्रायः सभी प्राचीन इतिहास वेत्ता २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तथा भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ राजा का परिवार पार्श्वनाथोपासक रहा होगा, ऐसा मानते हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ जिन का निर्वाण भगवान महावीर के जन्म (या केवल ज्ञान प्राप्ति) से २५० वर्ष पूर्व हुआ माना जाता है, श्रमण संस्कृति के निर्विवाद रूप से सर्वमान्य सिद्ध महापुरुष थे। उनके व्यक्तित्व एवं सिद्धांतों का वर्णन प्राचीन जैन व बौद्ध साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। डा० भागचन्द भास्कर के अनुसार "तथागत बुद्ध ने भी उनकी परम्परा में दीक्षित होकर कुछ समय तक आध्यात्मिक साधना की थी तथा बुद्ध के शिष्य सारिपुत्त और मौद्गलयान बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के पूर्व पार्श्व परम्परा के उपासक थे। भगवान महावीर को तीर्थंकर ऋषभ देव, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ आदि महापुरुषों का दर्शन विरासत में मिला था।

उन्होंने स्वयं भी तत्कालीन सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं का समीक्षण किया और यथानुसार जन समाज के कल्याणार्थ अपना चिन्तन प्रस्तुत किया। वे विशुद्ध मानवतावादी और आत्मवादी थे। उनकी दृष्टि व्यक्ति की पवित्र शक्ति और पवित्र साधनों पर केन्द्रित थी। ये साधन उनकी स्वयं की खोज के परिणाम तो थे ही, परन्तु एक पुरातन काल से चली आ रही ऐतिहासिक परम्परा से भी अनुस्यूत थे। अतः **वे जैन धर्म के संस्थापक न हो कर प्रचारक, प्रसारक और सुधारक थे।**"

जैन धर्म में तीर्थंकरों की अवधारणा शाश्वत धर्म को समयानुसार संस्कारित, शोधित तथा संवर्द्धित करके उसका प्रचार-प्रसार करने वाले महात्माओं की ही है। हमारे विचार में भगवान महावीर को 'नात्त' (नाथ या ज्ञात) कुलोत्पन्न कहे जाने का तात्पर्य यह है कि उनका कुल या परिवार नाथ सिद्धों की परम्परा का उपासक था जिनकी लम्बी शृंखला के अन्तिम छोर पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। भ० महावीर भ० पार्श्वनाथ का 'पुरुषादानीय' जैसे परम आदर श्रद्धा सूचक विशेषण के साथ स्मरण करते हैं। "नात्त पुत्त" भी कदाचित् उन्हें इसी अभिप्राय से कहा गया कि उन्होंने नाथ सिद्धों की परम्परा को जो उन्हें विरासत में मिली थी, एक योग्य उत्तराधिकारी पुत्र के समान समय की आवश्यकताओं के अनुसार शोधित व संस्कारित करके उसका अभूत पूर्व प्रचार-प्रसार किया। भगवान महावीर ने अपने पूर्ववर्ती सभी प्रमुख नाथ सिद्धों को—आदिनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक—एक लड़ी में पिरो कर अपने द्वारा उपदिष्ट धर्म के पुरोधा, तीर्थंकर घोषित किया तथा अत्यन्त विनम्रता पूर्वक अपने को उनके पुत्र (या उत्तराधिकारी) के रूप में ही प्रचारित करना पसन्द किया जो उन पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के धर्म का ही जन कल्याणार्थ प्रचार-प्रसार कर रहा था। यह तो उनके दूर दृष्टि युक्त महापंडित शिष्य इन्द्रभूति गौतम आदि गणधरों की ही सूझबूझ रही होगी कि उन्होंने अपने गुरू को तीर्थंकर घोषित कर तथा उन्हें वीर नाथ से सम्बोधित कर नाथ सिद्धों की लड़ी पूरी कर

दी ताकि भविष्य में कोई यशाभिलाषी तथाकथित तीर्थंकर जिन धर्म की विकृत व्याख्या कर मोक्ष मार्ग के साधकों को दिग्भ्रमित न कर सके। यदि ऐसा न किया गया होता तो कदाचित् ओशो रजनीश भी जैन धर्म के २५वें तीर्थंकर गिने जाते।

भ० महावीर के समय में पार्श्वनाथ पर्यन्त नाथ सिद्धों के उपासक नाथ वंशी या नाथ कुल वाले कहलाते हों तो कोई आश्चर्य नही। द्वादशांग श्रुत का छठा अंश **णायधम्म** कहा है जिसमें जैनधर्म के कुछ अति विख्यात साधकों का वर्णन जैन धर्म के व्यवहारिक पक्ष के निरूपण के साथ किया गया है। इस श्रुतांग की विषय वस्तु से तथाकथित ज्ञातृ कुलोत्पन्न लिच्छवी क्षत्रियो का कुछ लेना देना नहीं है।

परवर्ती मध्य युग में नाथ सिद्धों की परम्परा की एक शाखा के रूप में हमें गुरू मत्स्येन्द्र नाथ, गोरख नाथ आदि हठ योगियों के दर्शन होते हैं। इन हठ योगियों में आदिनाथी, धर्मनाथी, नेमिनाथी व पारसनाथी शाखाओं के नाम भी मिलते हैं।

नोट :–पृष्ठ ७२ पर पंक्ति १६ में **नात्तं पुत्त** के स्थान पर **नात्त पुत्त** पढ़ा जाय।

परिचर्चा

भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि

–श्री अजित प्रसाद जैन

हमने **शोधादर्श-३६** के चिन्तन कण स्तम्भ के अन्तर्गत (पृष्ठ ३०१–३०३ पर) आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि की विवादास्पदता पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि यह अनिर्णीत है कि भगवान की सही निर्वाण भूमि कौन सी है।

(i) क्या यह **कैलाश पर्वत** है, जैसा कि सम्पूर्ण दिगम्बर जैन वाङ्मय में माना गया है (**निर्वाण काण्ड** के अपवाद को छोड़ कर जिसमें "अष्टापद" उल्लेख किया गया है), तथा क्या यह हिमालय पर्वत श्रेणी का मानसरोवर के सन्निकट सुप्रसिद्ध कैलाश पर्वत शिखर ही है जिसे भगवान शिव का भी निवास स्थान माना गया है ? या

(ii) अष्टापद गिरि है, जैसा कि सम्पूर्ण श्वेताम्बर जैन वाङ्मय में तथा **निर्वाण काण्ड** में उल्लेख किया गया है ? तथा क्या अष्टापद और कैलाश एक ही पर्वत शिखर के दो नाम तो नहीं हैं तथा कैलाश की विशेष संरचना के कारण ही उसे अष्टापद भी कहा जाता हो ? या

(iii) सुप्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ बद्रीनाथ धाम ही भगवान की सही निर्वाण भूमि है जैसा कि पू० आचार्य श्री विद्यानन्द म० ने इस क्षेत्र की यात्रा करके घोषित किया था तथा जिसे भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी के प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुमोदन से निर्वाण क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा रहा है ?

श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री जिनप्रभ सूरि ने अपनी कृति **विविध तीर्थ कल्प** (रचना-सन् १२३२ ई०) में संग्रहीत अपने **अष्टापद गिरि कल्प** में अष्टापद का ही अपर नाम कैलाश बताया है पर साथ ही पौराणिक साहित्य के आधार से उसकी स्थिति अयोध्या नगरी से उत्तर दिशा में १२ योजन (१५० कि०मी०) की दूरी पर बताई है जिसकी धवल शिखर पंक्तियाँ आज भी आकाश निर्मल होने पर **अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट** से दिखाई पड़ती है। इसके निकट

ही मानसरोवर है जो परिपार्श्व में संचरण करते जलचर, मत्त मोर आदि पक्षियों के कोलाहल से युक्त है तथा इसकी उपत्यका में साकेत-वासी लोग नाना प्रकार की क्रीडाएं करते हैं।.....यह अष्टापद गिरि ८ योजन (१०० कि०मी०) ऊँचा स्वच्छ स्फटिक शिलामय है तथा इस पर योजन योजन के अन्तर में मेखला रूप आठ सीढ़ियां—पद हैं, जिससे अष्टापद नाम प्रसिद्ध हो गया।

श्री अष्टापद गिरि अपरनाम कैलाश पर्वत व मानसरोवर की ऊँचाई स्थिति के विषय में इस कल्प में दिये गए उपरोक्त विवरण तथा अन्य कथ्यों से यह स्पष्ट है कि सूरि जी ने इस निर्वाण क्षेत्र की स्वयं यात्रा नहीं की थी तथा यह कल्प पूर्णतया पौराणिक मिथक व कथ्यों पर ही आधारित है सिवाय इसके कि उन्होंने अष्टापद और कैलाश को एक ही पर्वत शिखर बता कर नाम के विवाद को समाप्त करने का प्रयास किया है। कल्प में इस शिखर की ऊँचाई १०० कि०मी० बताई गई है जबकि हिमालय के (तथा विश्व के भी) सबसे ऊँचे पर्वत शिखर माउण्ट एवरेस्ट की समुद्र तल से ऊँचाई ९ कि०मी० से अधिक नहीं हैं। अयोध्या के निकट किसी उड्डयकूट का आज कोई नाम निशान नहीं है। अयोध्या से मात्र १५० कि०मी० उत्तर दिशा में तो अधिक से अधिक तराई क्षेत्र में हिमालय की प्रारम्भिक गिरि श्रंखला की कोई पहाड़ी ही हो सकती है जिसके निकट कोई झील भी रही हो तथा जिसकी उपत्यका अयोध्या वासियों की क्रीड़ा स्थली रही होगी। वर्तमान में कैलाश-मानसरोवर के नाम से विख्यात गिरि शिखर तो अयोध्या से ४००-४५० कि०मी० से भी अधिक दूर उत्तर पश्चिम में तिब्बत में स्थित है। उसके विषय में प्रख्यात पर्वतीय विद्वान आचार्य भास्करानन्द लोहनी ने अपनी पुस्तक कुमाऊं में निम्न प्रकार वर्णन किया है—

"कैलाश मानसरोवर से २० मील पश्चिमोत्तर में है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से २२००० फुट है (कोई १९००० फुट ही मानते हैं)। कैलाश शिखर पक्के कसौटी वाले काले पत्थर का है तथा यह हमेशा स्वच्छ हिम से आच्छादित रहता है। यह हिम शिखर १६

ऐसे पर्वतों से चारों ओर से घिरा है,.....लगता है कि जैसे १६ दल वाले कमल का कोई पुष्प हो.....बाहर के ये पर्वत अर्धाकार हैं और कच्चे लाल पत्थर के बने हैं, कैलाश पर्वत तो अगम्य और अस्पर्शनीय है। यात्री इसके चारों ओर ही परिक्रमा करते हैं, यह घेरा २२ मील का है।

मानसरोवर–१४००० फुट की ऊँचाई पर हिम शिखरों के बीच होते हुए भी मानसरोवर का जल स्वभाव से शीतल है तथा इसमें आसानी से स्नान किया जा सकता है। इसमें विविध जाति के हंस हैं, राज हंस भी हैं **पर कमल नही हैं**। समूचे हिमालय क्षेत्र में इससे बड़ी झील नहीं है। इसका आकार गोलाई लिए हुए है। **मानसरोवर-कैलाश क्षेत्र में कोई बस्ती नहीं है।**

भारत सरकार के तत्वावधान में कैलाश—मानसरोवर की यात्रा का प्रबन्ध प्रत्येक वर्ष कुमाऊँ मण्डल विकास निगम लि० नैनीताल द्वारा किया जाता है। यात्रियों को ३०-३५ के बैचों में भेजा जाता है। टनकपुर से मानसरोवर तक की यात्रा २१४ मील की है।"

भगवान ऋषभदेव की सही निर्वाण भूमि के प्रसंग में हमें तीन सुधी पाठकों के पत्र प्राप्त हुए हैं जिनका सार नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

(१) **डा० अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद–**

भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली/साधना स्थली वर्तमान कैलाश पर्वत का क्षेत्र ही रहा होगा। लेकिन चूंकि भक्त जनों को वहां तक जाने में असुविधा रहती थी, अतः वे सुगमता से जिस स्थान तक पहुंच पाए वहीं पर उनकी मूर्ति स्थापित कर दी। बद्रीनाथ में स्थित मूर्ति को भगवान ऋषभदेव की ही मूर्ति बताया जाने लगा है।

(२) **श्री गुलाब चन्द्र जैन, विदिशा—**

पद का अर्थ स्थान है (जैसे परम पद, मोक्ष पद)। अष्टापद एक समूह वाची शब्द है। हिमाचल के आठ गिरि शिखरों—गौरी

शंकर, नन्दा देवी, द्रोणगिरि, नर, नारायण, त्रिशूली, विशाला एवं कैलाश—का सामूहिक नाम है।.....सम्पूर्ण हिमालय ही एक पावन तीर्थ क्षेत्र है।.....महाराज नाभिराय ने भी इन्हीं गिरि शिखरों से मुक्ति प्राप्त की थी।.....कैलाश की ओर गमन करते समय मुनि ऋषभदेव ने विशाला पर तपश्चरण किया था, उनका समवशरण भी यहां आयोजित हुआ था। महाराज नाभिराय की मुक्ति स्थली एवं ऋषभ नाथ की तपस्थली तथा समवशरण स्थली होने का गौरव विशाला—बद्रीनाथ गिरि शिखर को प्राप्त है।

[नोट—उपरोक्त मन्तव्य श्री गुलाब चन्द्र जी का स्वयं का ही प्रतीत होता है। प्राचीन जैन पुराण-कथा साहित्य से इसका समर्थन नहीं होता कि बद्रीनाथ—विशाला पर्वत महाराज नाभिराय व भ० ऋषभदेव की तपस्थली रहा था या वहां पर भगवान का कभी समवशरण आयोजित हुआ था।—सम्पादक]

(३) **श्री आदित्य जैन, लखनऊ—**

वर्तमान में तिब्बत में स्थित कैलाश—मानसरोवर ही भगवान का निर्वाण स्थल है तथा प्राचीन काल में भी जैन तीर्थ यात्री इस क्षेत्र की यात्रा करते रहे हैं, ऐसे उल्लेख पुराणों में मिलते हैं। भारत सरकार द्वारा सन् १९९६ में आयोजित कैलाश—मानसरोवर यात्रा में चार जैन बन्धु (सर्वश्री भंवर लाल संघवी, शिवगंज, राज०, किशोर जैन, बंगलौर, शांतिलाल जैन, मुम्बई तथा पदमचन्द आस्तोपाल) भी यात्रा दल में शामिल हुए थे। पत्राचार से पूछे जाने पर श्री संघवी ने कैलाश—मानसरोवर का वर्णन निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

".....कैलाश बेस कैम्प पहुंचने पर एक तिब्बती-चीनी गाइड ने उन्हें बताया.....कि वहां से साढ़े तीन घन्टे पैदल चढ़ाई के बाद जो पहाड़ है वह अष्टापद है जहां जैनो के भगवान ने तप किया था। १५०-२०० वर्ष पूर्व तक उस पहाड़ पर मन्दिर में जैन मूर्तियां थीं और तीर्थ यात्री आते थे। बाद में वह बौद्ध मन्दिर बन गया। यह जानकारी प्राप्त होने पर जैनी यात्रियों ने कैलाश परिक्रमा बीच में

ही स्थगित कर अष्टापद की यात्रा का मन बनाया। ३० मील परिधि की कैलाश परिक्रमा के अन्तर्गत अनेकों पर्वतों का समूह समाहित होता है जिनमें अष्टापद भी आता है।.....अष्टापद की तलहटी ६००० मीटर की ऊंचाई पर है। यहां तक की चढ़ाई भी काफी कठिन है।.....**अष्टापद पर्वत पर दूर से आठ कदमों के प्रतीक क्रमबद्ध उभार दिखलाई पड़ते हैं**, पृष्ठ भूमि में धवल कैलाश पर्वत के दर्शन होते हैं। इस तीर्थ के दूर से ही दर्शन सम्भव हैं।"

[उपरोक्त विवरण के अनुसार कैलाश व अष्टापद दो अलग-अलग पर्वत शिखर हैं, दोनों अनारोहणीय हैं, यद्यपि एक दूसरे के कुछ समीप हैं। अष्टापद पर्वत की स्थिति की अभी तक किसी अन्य जैन यात्री ने पुष्टि नहीं की हैं। श्री आदित्य ने एक ब्र० लामचीदास के यात्रा विवरण का भी उल्लेख किया है जो भूटान देश के मूल निवासी थे तथा उन्होंने ब्रह्मा (म्यामार) तथा चीन व तिब्बत की यात्रा करते हुए कैलाश क्षेत्र की वन्दना की थी। उन्होंने अपना यात्रा विवरण वि० सं० १८०६ (१७४९ ई०) में लिखा था। श्री रामजीत जैन एडवोकेट कृत **गोलालारे जैन जाति इतिहास** के पृष्ठ १२६-१४४ पर प्रकाशित उनकी यात्रा विवरण के कुछ संगत अंश नीचे उद्धृत कर रहे हैं, यात्रा वृत्तान्त मध्य प्रदेशीय हिन्दी में है, उसके खड़ी बोली रूपान्तरण से ये अंश दे रहे हैं।—सम्पादक]

ब्रह्मचारी लामचीदास की कैलाश यात्रा

"**मानसरोवर**—तिब्बत में ऐशन शहर से ६० कोस आगे सुन्दर वन पहुंचे। इस वन में मानसरोवर झील है.....जिसमें तरह-तरह के पक्षी कल्लोल करते हैं। **वन में दाडिम, अखरोट, अमरूद,** आलूबुखारा, सम्पूर्ण सुगन्धित फल, मेवे, फूल रहे हैं। मानसरोवर **में सुन्दर कमल खिल** रहे हैं, इस वन के किनारे **सिलवन नगर** है, इसमें दो-दो कोस के बाजार हैं। बीस पंथी जैनी बसे हैं। उनके १०४ शिखर बन्द रत्न-जड़े मन्दिर हैं। वन में ३००० मन्दिर हैं जिनमें नन्दीश्वर द्वीप के ५२ चैत्यालय भी हैं। मानसरोवर से ६० कोस चल कर कैलाश के दक्षिण की ओर पूर्व पश्चिम लम्बा **हनोवर**

देश है, राजा जैनी है, लाखों जैन मन्दिर हैं, **१५००० जैन घर हैं, कोस-दो-कोस ऊंचे शिखर हैं।** इसके आगे ४० कोस तक भयावह वन है। आगे एक योजन **सगर गंग दरिया** जो चार कोस गहरा है, उसके पार ३२ **कोस ऊंचा कैलाश है** जिसके दर्शन १००-१०० कोस तक होते हैं। ब्रह्मचारी जी की लगन परख कर एक व्यन्तर देव उन्हें सगर गंग दरिया पार करा कर कैलाश पर्वत पर ले गया। वहां उन्होंने भ० ऋषभदेव की रत्नों जड़ी टोंक के दर्शन किए। श्वेत वर्ण रत्नमयी गुम्बज की चोटी दर्शनीय है, जिन बिम्ब अत्यन्त मनोज्ञ हैं। दक्षिण दिशा में ८०० धनुष ऊंची स्वर्णमयी टोंक भरत चक्रवर्ती की है। आगे चल कर महाराज भरत के बनवाए ७२ स्वर्णमयी रत्न जटित मन्दिर हैं जिनमें ७२-७२ स्वर्ण, रत्न, धातु व पाषाण की प्रतिमाएं हैं.....इस प्रकार **कैलाश (अष्टापद) का जैसा वर्णन सुना था साक्षात वन्दना करी।**.....चारों दिशाओं में एक-एक योजन के सिवाड़ बने हैं जिससे इस गिरि का नाम अष्टापद है, गिरि का चक्र ४० योजन का है।.....सभी टोंक मन्दिर शोभनीय हैं.....दो माह तक साक्षात उनके दर्शन किए। कैलाश की चोटी ८ योजन ऊँची है। शार्दूल, अष्टापद, सिंह, मृगादिक, केहरी, रीछ, चीता, सुमना जानवर इर्द गिर्द भयंकर, फणीन्द्र, बिच्छू विषधर जीव सदैव विचरण करते हैं। पर्वत अति शोभनीय है, दरिया पार कर उसी मार्ग से वापस आया।.....इस प्रकार मैं लामची दास १८ वर्ष की यात्रा के बाद अपने देश वापस आया।"

ब्रह्मचारी लामची दास का ब्रह्मा-चीन-तिब्बत-कैलाश मानसरोवर का यात्रा विवरण किसी स्वप्न लोक में विचरण करने वाले का विवरण ही प्रतीत होता है। उन्हें ब्रह्मा, चीन व तिब्बत में ही नहीं कैलाश-मानसरोवर के क्षेत्र में भी कई बड़े नगर मिले जिनमें प्रायः सभी में कई-कई कोस लम्बे बाजार, हजारों जैनी तथा जिन मन्दिर थे, कई राजा जैन धर्मावलम्बी भी थे। कैलाश पर्वत का वर्णन पुराणों के वर्णन के अनुरूप ही नहीं बल्कि और भी अति-

(शेष पृष्ठ ८१ पर)

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म-जयन्ती

शनिवार ६-२-१९९९ को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावरिधि, स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन के ८८वें जन्म दिन पर **'शोध की विधा'** विषय पर एक संवाद-गोष्ठी आयोजित हुई जिसकी अध्यक्षता वरिष्ठ पत्रकार श्री अजित प्रसाद जैन ने की। अध्यक्ष द्वारा श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण तथा विशिष्ट अतिथि डा० ए० एल० श्रीवास्तव द्वारा दीप प्रज्ज्वलन से कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। मंगलाचरण स्वरूप श्री रमा कान्त जैन द्वारा वाणी वन्दना के उपरान्त श्रद्धेय डाक्टर साहब के प्रिय स्तोत्र **महावीराष्टक** तथा उनके द्वारा रचित **वीतराग स्वरूपम्** एवं **जय महावीर नमो** का सामूहिक गायन हुआ।

गोष्ठी के प्रथम चक्र में श्रद्धेय डाक्टर साहब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में चर्चा हुई और समागतवृन्द ने उनसे सम्बन्धित अपने रोचक संस्मरण सुनाये और उद्‌गार व्यक्त किये। जैन मिलन लखनऊ के अध्यक्ष श्री नरेश चन्द्र जैन, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग में रीडर डा० अमर सिंह, तथा

(पृष्ठ ८० का शेष)

रंजित प्रतीत होता है जिसका यथार्थ से कोई साम्य नहीं है। उन्होंने "चीन के पीकिंग नगर में सड़कों पर एक सूत जैसा पतला तार देखा जो घड़ी-घड़ी में हजार कोस की खबर दे सकता है। राजा के सिपाही अन्य शस्त्रों के अतिरिक्त बम गोले, एटम चक्र आदि लिये तैयार खड़े रहते हैं। वहां के एक पर्वत में सब रंगों की खान है। इन्हीं रंगों से चीन की **ड्रेसेज** छापे जाते हैं। कारखानों में **कल पुतली २० गज के अरज के पट बुनती** हैं।" इस वर्णन में "बम, एटम चक्र, ड्रेस, कपड़ा बुनने वाली यन्त्र कल पुतली" के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि यह वर्णन इसी शताब्दी के किसी कल्पना शील व्यक्ति द्वारा पौराणिक वर्णन की सत्यता पर विश्वास दृढ़ करने के लिए रचा गया प्रतीत होता है। ★

राम-कथा संग्रहालय अयोध्या के भू० पू० निदेशक डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी ने अपने संस्मरणों में अन्य बातों के साथ बताया कि किस प्रकार डाक्टर साहब उन्हें आगे अध्ययन और शोध कार्य के लिये प्रेरित व प्रोत्साहित करते रहे। श्री अजित प्रसाद जैन, जो उनके अनुज ही नहीं वरन् जिनका लगभग ७० वर्ष तक उनका साथ रहा, ने उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। डा० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने श्रद्धेय डाक्टर साहब के प्रति अपनी काव्य-सुमनांजलि प्रस्तुत की—

ज्योतिमय ज्योति प्रसाद के
शुभ पावन जन्म दिनांक पर
विगत स्मृति ले युग संत की
पुनः देखो काल है आ गया।

यदपि न रहे तुम सदेह अब
पर अपने यशः शरीर से
मन में हृदय में भावना में
कर रहे सतत निवास हो।

ज्ञान अर्जन की निरन्तर प्रेरणा
देते रहे हे ज्ञान वर हमको सदा
शोध की अनुपम पिपासा को लिये
रहा अध्ययन रत सदा जीवन तुम्हारा।

सृजित कर नव ग्रंथ कितने ही
रच दिया नये इतिहास को
कह उठे सब देख अद्भुत साधना
हो तुम्हीं इतिहास के सच्चे मनीषी।

थाह मिलती न थी कहीं भी
गहराइयों की कुछ तुम्हारे
कह उठे सब एक स्वर से मुग्ध होकर
ज्ञान विद्या के महावारिधि तुम्हीं हो।

सरल जीवन उच्च भावों में ढला था
और करुणा हो उठी साकार तुम में
शान्त वाणी में तुम्हारी देवता हे
थकित मन पाता सदा विश्राम था।

जन्म दिन आता चला जाता तुम्हारा
और है प्रतिवर्ष चलती यह प्रथा
काश जीवन से तुम्हारे ज्योति वर हे
मिल हमें पाते कभी कुछ ज्योति के कण—

ज्योति कण जो ज्ञान को करते प्रकाशित
पथ दिखाते आत्म शोधन का हमें
और फिर हम स्वयं को कुछ जान पाते
ज्ञान मय निज रूप को पहचान पाते ।

पुनः स्मृति में तुम्हारी अमर साधक
भाव विह्वल, विनत मन श्रद्धावनत हो
कर रहे हम सुमन श्रद्धा के समर्पित
पथ प्रकाशक चरण चिन्हों पर तुम्हारे।

तदनन्तर श्री रमा कान्त जैन ने 'शोध की विधा' पर संवाद-गोष्ठी का सूत्रपात करते हुए कहा कि शोध के लिए आवश्यक है कि वह तथ्य परक हो और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो । संवाद गोष्ठी में डा० ए० एल० श्रीवास्तव, डा० अमर सिंह, डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, डा० ओम प्रकाश त्रिवेदी तथा डा० शशि कान्त ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये । सभी के विचारों का मुख्य निष्कर्ष रहा कि शोध पूर्वाग्रहों से मुक्त और निष्पक्ष होनी चाहिए । डा० शशि कान्त ने इस बात पर बल दिया कि शोध एकांगी न हो और शोधार्थियों से यह अपेक्षित है कि वे सही बात को कहने का साहस रखें ।

अन्त में, इस बीच ४ नवम्बर, १९९८, को जयपुर में स्वर्गवासी हो गये इतिहास-रत्न डा० कस्तूर चन्द्र कासलीवाल, १० जनवरी, १९९९, को वाराणसी में परलोक यात्रा कर गये प्रख्यात विद्वान प्रो० खुशाल चन्द्र गोरावाला तथा ४ फरवरी को क्लीवलैण्ड (अमेरिका) में इहलीला समाप्त कर जाने वाले जैन समाज के प्रमुख नेता एवं पत्र उद्योगपति साहू अशोक कुमार जैन के निधन पर दो मिनट मौन रह णमोकार का जाप कर दिवंगतों की आत्मा की शांति की कामना की गई ।

—नलिन कान्त जैन

साहित्य सत्कार

आत्म साक्षात्कार का पथ—जैन अयोग साधना—ले०—बी० रमेश जैन; संयोजक—उत्तम चन्द जैन, १३ शारदा बिल्डिंग, 3rd Main, Srierampuram, Bangalore—५६००२१; १९९८; पृ० १५०; मूल्य रु० ५०/-

वैदिक संस्कृति, बौद्ध धर्म तथा जैन दर्शन, तीनो में 'योग' को बहुत महत्व दिया गया है किन्तु जहां अन्य दर्शन योग साधना पर बल देते है वहां जैन दर्शन में अयोग (अर्थात् मन-वचन-काय की प्रवृत्ति के त्याग) को साधना को ही आत्म साक्षात्कार का पथ माना गया है। जैन अयोग साधना क्या है, इसके सिद्धान्त तथा इसकी प्रयोगात्मक विधि का विश्लेषण इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक को तीन भागों में सम्पादित किया गया है। प्रथम भाग में जैन अयोग साधना तथा जैन द्वादशांग योग (अर्थात ६ बाह्य तथा ६ अभ्यन्तर तप) के कुछेक तप भेदों (विशेष रूप से अवमोदय, रस परित्याग, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान) के सिद्धान्तों का प्रयोगात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय भाग में प्राकृतिक चिकित्सा पर एवं जैन योग साधना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय भाग में विभिन्न विद्वानों के जैन योग पर आलेख संकलित किए गये हैं।

पुस्तक में जैन अयोग साधना पद्धति को बड़े अनूठे एवं व्यवहारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक पठनीय, चिन्तनीय एवं संग्रहणीय है।

—अजित प्रसाद जैन

जयोदय महाकाव्य परिशीलन—(आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत "जयोदय महाकाव्य" का समीक्षात्मक अनुशीलन एवम् मदनगंज—किशनगढ़ चातुर्मास १९९६ में सम्पन्न विविध ऐतिहासिक आयोजनों का चित्रण)—सं० डा० रमेश चन्द्र जैन, डा० कमलेश कुमार जैन एवं पं० अरुण कुमार शास्त्री; प्र०—श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावना

समिति एवं श्री सकल दिगम्बर जैन समाज, मदनगंज–किशनगढ़; पृ० ६१२ + ७७ + चित्र १९ + ८२; मूल्य रु० १००/-

यह विशाल ग्रन्थ दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में ११६ आलेख समाहित हैं जिनमें से ७१ वे आलेख हैं जिनका वाचन मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) में मुनिश्री सुधासागर महाराज की प्रेरणा से दिनांक २९-९-१९९५ से ३-१०-१९९५ तक सम्पन्न पांच दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में चौदह सत्रों में गणमान्य विद्वानों द्वारा ब्र० पं० भूरामल जी शास्त्री, जो दीक्षोपरान्त मुनिश्री और आचार्यश्री ज्ञान-सागर के नाम से विख्यात हुए, द्वारा संस्कृत में रचित **जयोदय महाकाव्य** के विविध पक्षों को उजागर करने के लिये किया गया था। द्वितीय खण्ड में २९ आलेख हैं जिनमें मुख्यतया मुनिश्री सुधासागर जी की प्रशस्ति है और मदनगंज-किशनगढ़ की जैन संस्कृति आदि पर प्रकाश डाला गया है। **जयोदय महाकाव्य** के अध्येताओं के लिए यह विपुल ग्रन्थ उपयोगी है।

जैन गजट : विशेषांक (२१ जनवरी, १९९९)—प्रधान सं० श्री श्याम सुन्दर लाल शास्त्री एवं सं० श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन; प्र०-श्री भारत-वर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा, नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स कम्पाउण्ड, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ-२२६००४; पृ० १३६ + ८ + चित्र; मूल्य रु० ६०/-

२० जनवरी, १९९९, को शान्ति वीर नगर, श्री महावीर जी में सम्पन्न श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा-शताब्दी समापन समारोह के उपलक्ष में साप्ताहिक **जैन गजट** का यह भव्य प्रकाशन ७९ आलेखों के माध्यम से अपने कलेवर में महा-सभा की सौ वर्ष की जीवन यात्रा का इतिहास, उसकी गतिविधियों और समय-समय पर हुई विविध उपलब्धियों को संजोये हुए है। इसमें हमें कतिपय स्वर्गस्थ पूज्य आचार्यों आदि के साथ-साथ वर्तमान आचार्यों, मुनि महाराजों, आर्यिका माताओं, श्रेष्ठि महानुभावों, विभिन्न एवं विविध समारोहों, कतिपय मूर्तियों और जीर्ण-शीर्ण स्थिति में विद्यमान कतिपय मन्दिरों आदि के रंगीन एवं श्वेत-श्याम

चित्रों की झांकी का भी दर्शन होता है। महासभा और **जैन गजट** से जुड़ी रही और जुड़ी हुई अनेक विभूतियों के परिचय एवं प्रचार आदि से भरपूर इस विशेषांक प्रकाशन के लिये सम्पादक मण्डल और महासभा बधाई के पात्र हैं।

सदलगा के सन्त—रचना-कवि लालचन्द्र जैन 'राकेश'; प्र०—ज्ञानोदय विद्यापीठ, वल्लभनगर, बी० एच० ई० एल०, भोपाल तथा श्री दिगम्बर जैन मुनिसंघ चातुर्मास सेवा समिति, भगवान महावीर बिहार, गंज बसौदा (विदिशा); १९९८; पृ० २०४+३४+चित्र; मूल्य रु० ५०/-

कर्नाटक के बेलगाम जिलान्तर्गत चिबकौडी (सदलगा) में जन्मे विद्याधर, जो आज आचार्य श्री १०८ विद्यासागर महाराज के नाम से प्रख्यात हैं, की जन्म (१०-१०-१९४६) से लेकर १९९७ तक ५१ वर्षीय जीवन यात्रा के विविध पड़ावों, आयामों और कृतित्व को बड़ी सुघरता से कविवर 'राकेश' जी ने अपने काव्य सुमनों द्वारा पच्चीस प्रसूनों की मणिमाला में 'सदलगा के सन्त' के नाम से पिरोया है। सरल-सुबोध भाषा में काव्य सौष्ठव से परिपूर्ण यह कृति आचार्यश्री के प्रति कवि की अनन्य भक्ति की परिचायक है। 'उद्घाटन' शीर्षक से डा० शेखर चन्द्र जैन की भाव-विभोर करने वाली प्रस्तावना तथा प्रकाशक द्वारा 'सूर्योदय' के माध्यम से प्रस्तुत 'गंज बसौदा', जहाँ के साधर्मी भाइयों के सहयोग से यह व्ययसाध्य भव्य प्रकाशन सम्भव हो सका, के परिचय ने पुस्तक में चार चाँद लगा दिये हैं। कृति आचार्यश्री के भक्तों के लिये ही नही अपितु सभी काव्य रसिकों को आनन्दानुभूति प्रदान करेगी। कवि राकेश जी इस हेतु साधुवाद के पात्र हैं।

आत्मान्वेषी—ले० मुनि क्षमासागर; प्र०—विद्या प्रकाशन मन्दिर, १६८१, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; द्वि० संस्करण १९९८; पृ० १२० + २२ चित्र; मूल्य रु० ३०/-

आचार्यश्री विद्यासागर जी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाशित कृतियों की श्रृंखला में आर्ट पेपर पर व्ययसाध्य यह

भव्य कृति आचार्य श्री के अंतेवासी मुनि क्षमासागर जी की लेखनी से प्रसूत है। यह दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में आचार्यश्री के अनन्य भक्त और शब्द शिल्पी मुनिश्री ने उनकी माताजी के श्रीमुख से उनके दीक्षा लेने से लेकर उनके माता-पिता और दो अनुजों के दीक्षा लेने तक का यात्रा वृत्तान्त संजोया है और द्वितीय भाग में वर्ष १९७५ से लेकर १९९५ तक के आचार्यश्री के विभिन्न प्रेरक प्रसंगों को शब्दांकित किया है। विद्यासागर जी के दीक्षा गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी तथा कृतिकार मुनिश्री क्षमासागर जी का संक्षिप्त परिचय भी इसमें समाहित है। यशपाल जी की सारपूर्ण भूमिका और नीरज जैन के उद्‌गारों ने कृति की भव्यता में अभिवृद्धि की है।

हिन्दी-साहित्य की सन्त काव्य-परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन—ले० डा० बारे लाल जैन; प्र०—श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, पी-४, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७; पृष्ठ २५४ + २३ + चित्र; मूल्य रु० ४५/-

डा. बारे लाल जैन की विवेच्य कृति उनका शोध-प्रबन्ध है, जिस पर अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.) ने सन् १९९२ में उन्हें पी-एच. डी. उपाधि प्रदान की है और जिसका विमोचन हाल ही में डा. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डा. कान्ती कुमार जैन द्वारा किया गया है। यह शोध-प्रबन्ध ९ अध्यायों में है और अन्त में परिशिष्ट में आधार ग्रन्थ, सन्दर्भ-ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची समाविष्ट है। अध्ययन क्रमशः सन्त-काव्य की पृष्ठभूमि और आचार्य विद्यासागर; आचार्य विद्यासागर : व्यक्तित्व और जीवन-सूत्र; आचार्य विद्यासागर का कृतित्व : एक परिचयात्मक पृष्ठ-भूमि; हिन्दी की सन्त काव्य-परम्परा के सन्दर्भ में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन; प्रमुख सन्त कवियों के साहित्य की भावभूमि और आचार्य विद्यासागर के रचना-संसार के विविध आयाम; आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का कलापक्ष की दृष्टि से

अनुशीलन; आचार्य विद्यासागर की स्फुट एवं अप्रकाशित कृतियाँ : एक अनुशीलन; समकालीन समाज को आचार्य विद्यासागर द्वारा सामाजिक और धार्मिक उत्थान की दृष्टि से योगदान; तथा उपसंहार; शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है।

आचार्यश्री की ५१ प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियों को आधार बना, जैन एवं जैनेतर विद्वानों द्वारा रचित ८३ ग्रन्थों तथा १६ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तद्विषयक रचनाओं का सहारा ले डा० जैन ने यह श्रमसाध्य शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया है। आचार्यश्री के साथ-साथ उन्होंने पूर्व के प्रमुख सन्त कवियों—मुनि योगीन्दु, मुनि राम सिंह, नामदेव, कबीर, रविदास, दादू, सुन्दर दास, मलूक दास कवि बनारसी दास, गुरु नानक और कवि द्यानतराय के साहित्य का अवगाहन कर, उनका संक्षिप्त परिचय देते हुए, उनकी वाणी और विचारों की साम्यता आचार्यश्री की कृतियों में ढूढ़ने का सत्प्रयास किया है।

आचार्यश्री के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर विभिन्न विद्वद्जन द्वारा जो अनेक सुललित ग्रन्थ इधर प्रकाश में आये हैं उनमें डा० बारे लाल जी का यह शोध-प्रबन्ध अपना समुचित स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा हमें विश्वास है और इसके लिए वह साधुवाद के पात्र हैं।

सरल जैन विवाह विधि एवं सिलान्यासादि मुहूर्त्त संग्रह—मूल लेखक स्व० पं० महेन्द्र कुमार जी अजमेरा; सं०-पं० सोहन लाल जैन अग्रवाल एवं श्री ताराचन्द्र जैन अग्रवाल; प्र०—गट्टू लाल जैन अग्रवाल एवं भ्रातागण, पचेवर (टोंक); जून १९९८; पृ० ९६ + १२ + ४ + चित्र; मूल्य एक रुपया पोस्टेज हेतु

बिहारी जैन अग्रवाल ग्रन्थमाला के पुष्प स्वरूप अपने पूज्य पिता जी स्व० श्री पाँचूलाल जैन अग्रवाल की पुण्य स्मृति में उनके धर्मनिष्ठ सुपुत्रों द्वारा सर्वजन उपयोगार्थ सरल जैन विवाह विधि एवं शिलान्यास आदि विभिन्न मुहूर्तों पर सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की जानकारी देने वाली यह कृति भेंट स्वरूप प्रकाशित की

है। इसमें यथाप्रसंग अनेक पूजा-पाठ, स्तोत्र, आदि भी समाहित किए गये हैं। गृहस्थ श्रावकों के विविध लौकिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने के लिए यह एक उपयोगी पुस्तिका है, जो प्रकाशक से मात्र डाक व्यय भेज कर प्राप्त की जा सकती है।

भगवान ऋषभदेव काव्यशतक एवं भजन संग्रह—ले० श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री; प्र०-दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ); पृ० ८८ + २३ + ४ चित्र; मूल्य रु० २०/-

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की धर्मपरायणा सबसे छोटी भगिनी श्रीमती त्रिशला जैन की लेखनी से प्रसूत इस कृति में मुख्यतः भगवान ऋषभदेव काव्यशतक, पार्श्वप्रभु का कव्वाली विधा में जीवन दर्शन, रक्षाबन्धन पर्व कथा, २२ भजन, ८ आरती, कविता व मुक्तक आदि हैं। कृति रचयिता की काव्य प्रतिभा, धार्मिक ज्ञान और भक्ति की परिचायक है और सुधि श्रावकों के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है।

सोना ही सोना—र०-श्री पन्नालाल जैन 'लाल'; प्र०-लाल प्रकाशन, मच्छरदानी भवन, रीवा (म० प्र०); पृ० ५२ + ४ + आवरण; मूल्य रु० ८/-

८३-वर्षीय प्रबुद्ध श्रावक, सम्पन्न गृहस्थ, कुशल चिकित्सक, विद्वान एवं सुकवि श्री पन्नालाल जैन 'लाल' द्वारा रचित ५२ गीत एवं भजन प्रस्तुत कृति में समाहित हैं। 'आत्मधर्म' पत्रिका में कभी पढ़ी धर्म की व्याख्या और कबीर की वाणी से प्रभावित तथा अपने मनन से धर्म का जो व्यवहारिक स्वरूप कवि मन को भाया उसकी अभिव्यक्ति इन रचनाओं में है। भाषा सरल और सुबोध है। कवि के शब्दों में "असली पूजा घर की चक्की-पूजा अर्थात् अपने दैनिक व्यवहार में आने वाले प्राणी हैं जो वही घर की चक्की है, इनके प्रति सद्भाव, प्रेम व सहिष्णुता ही सच्ची पूजा उपासना है।" उदात्त भावों से ओत-प्रोत यह कृति सुधि पाठकों के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है।

दर्शन-पूजन विधि (प्रारम्भिक जानकारी व अर्थ)—सं० एवं प्र०—श्री शेखर चन्द्र जैन, बी-२५२, वैशाली नगर, जयपुर-३०२०२१; पृ० १६८ + ८ + चित्र; मूल्य सदुपयोग

दर्शन-पूजन सम्बन्धी प्रारम्भिक जानकारी; स्तुति, स्तोत्र, मंत्रादि—अर्थ सहित; नित्य पूजन—अर्थ सहित; अन्य पूजन तथा आरती नामक पाँच खण्डों में संकलित यह कृति सभी श्रावकों के लिये उपयोगी है। राजस्थान प्रशासनिक सेवा से अवकाश-प्राप्त प्रबुद्ध श्रावक श्री शेखर चन्द्र जैन ने सरल-सुबोध भाषा में दर्शन-पूजन आदि सम्बन्धी प्रारम्भिक जानकारी युक्तिसंगत ढंग से दी है जो बच्चों को ही नहीं अपितु प्रौढ़ जनों को भी प्राय: नहीं होती और हम गतानुगतिक अपने-अपने ढंग से मन्दिर में जिनेन्द्र देव का दर्शन कर आते हैं। संस्कृत और हिन्दी में रचित विभिन्न पूजाओं का पाठ भी हम बिना अर्थ समझे तोता-रटन्त की भांति करते रहते हैं, किन्तु यदि पूजा में निहित भाव (अर्थ) को समझ कर उन्हें पढ़ें तो आनन्द अधिक आयेगा, यह निस्सन्देह है। इस सद्उद्देश्य से श्री शेखर चन्द्र जैन द्वारा किया गया श्रम श्लाघनीय है और सदुपयोग हेतु प्रेमोपहार-स्वरूप यह कृति भेंट करने के लिए वह बधाई के पात्र हैं।

क ख ग—र०—श्री सुरेन्द्र पाण्डेय 'रज्जन'; प्र०—श्रीमती रानी पाण्डेय, सी-७८, हर्ष विहार, अलीगंज, लखनऊ; २९-१२-१९९६; पृ० ४०; मूल्य रु० २५/-

संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश शासन, के पद से सेवा-निवृत्त श्री सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय की यह काव्यकृति मनमुदित करने वाली है। हिन्दी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों से उस अक्षर की गीतमाला के पुष्पों को इस प्रकार पिरोया गया है कि सबकी सुगन्ध अलग-अलग होते हुए भी माला की एकता बनी रहे। अपने इन गीतों में उन्होंने मानव जीवन के व्यावहारिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास की दृष्टि से उपयोगी सामान्य बातों को शब्दबद्ध किया है। यद्यपि बालकों और नव साक्षरों की दृष्टि से कृति का

प्रणयन हुआ है, आबालबद्ध सभी इससे लाभान्वित होंगे, ऐसा विश्वास है।

नीम की छाँव—र० एवं प्र०—श्री रामदेव लाल 'विभोर', गिरजा सदन, ५६५क/७५ख, अमरुदाहीबाग, आलमबाग, लखनऊ; १९९८; पृ० ५० + १४; मूल्य रु० ४०/-

भारतीय डाक सेवा में प्रवर अधीक्षक पद से सेवा-निवृत्त कवि रामदेव लाल ने 'गुणिषु प्रमोदं' की भावना से अपनी स्मृतियों में संजोये बचपन में बिताये अपने ग्राम्य जीवन में देखे कर्मठता, सद्भाव, संस्कारों और नैतिकता से भरपूर व्यक्तित्व को काव्य-सुमनों की माला अर्पित कर आज के आम मानव को भी उनसे प्रेरणा लेने के सद्उद्देश्य से इस काव्य कृति की रचना की है। भाषा सरल-सुबोध है तथा कृति प्रेरणास्पद है।

दूर्वा बालसाहित्यविशेषांक—संस्कृत-त्रैमासिकी (द्वितीयवर्षस्य चतुर्थांक); सं० श्री राधावल्लभ; प्र०—मध्य प्रदेश-संस्कृत अकादेमी, संस्कृति भवनम्, बाणगङ्गा, भोपाल-४६२००३; पृ० ८०; एकस्य अङ्कस्य मूल्यम् १० रूप्यकाणि

बालरुचिरनुकूलं इच्छारामद्विवेदी 'प्रणवः' महाभागस्य विंशतिः गीतानि, 'अभिराज' राजेन्द्रमिश्रस्य किशोरगीतानि, अष्टकविमनीषिणां दशकाव्यानि, पञ्चमहाभागानां षडकथाः, त्रयः लेखकानाञ्च निबन्धाः अस्मिन् अङ्के समाहिताः। सरल-सुबोध-संस्कृत भाषायां प्रस्तुतोऽयम् अङ्कः न केवलं बालोपयोगी, प्रौढजनेभ्योऽपिरसदायकः। अस्य सम्पादकः प्रकाशकश्च एतदर्थं साधुवादार्हम्।

—रमा कान्त जैन

देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव—सं० ले०-श्री कपिल कुमार जैन, सी-ए०, १०७/२, थापर नगर, मेरठ; १६-१-१९९९; पृ० ४८+४; मूल्य स्वाध्याय

श्री कपिल कुमार जैन ने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का अनुश्रुति गम्य परिचय १००८ पंक्तियों में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है।

यह ऋषभदेव के विषय में जिज्ञासा प्रेरित करेगा । प्रयत्न सराहनीय है ।

शाकाहार—सं० श्री गम्भीर चन्द्र जैन (छाबड़ा); प्र०—श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा, जीवदया विभाग, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ; १९९९; पृ० ५४ + ४; मूल्य जीवनोपयोग

इस पुस्तिका में श्री गम्भीर चन्द्र जैन ने शाकाहार एवं अहिंसा के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों की मान्यतायें तथा विशिष्ट महापुरुषों के विचार संकलित करने के साथ ही, शाकाहार के लाभ और मांसाहार की हानियों को भी समाहित किया है । मादक द्रव्यों के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है । शाकाहार के प्रचार के लिए पुस्तिका उपयोगी है ।

संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान—ले० डा० नरेन्द्र सिंह राजपूत; प्र०—आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर; १९९१; ३०४ + xvi; मूल्य ५०/-

डा० नरेन्द्र सिंह राजपूत द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिये डा० हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में, डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' के निर्देशन में, प्रस्तुत इस शोध-प्रबन्ध में संस्कृत काव्य के विकास में बीसवी शताब्दी के जैन मनीषियों के योगदान का समाकलन किया गया है । अध्ययन छः अध्यायों में विभक्त है और परिशिष्ट में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है । प्राक्कथन में लेखक ने अपनी शोध विधा पर प्रकाश डाला है और जैन काव्य की विशिष्ट विशेषताओं को भी इंगित किया है । संस्कृत साहित्य का अन्तः दर्शन प्रस्तुत करने के उपरान्त बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य का अन्तर्विभाजन दिया है जो इस शताब्दी में रचे गये सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का निदर्शन करता है और २९० कृतियों को उनके लेखकों के नाम सहित वर्गीकृत रूप से सूचीबद्ध करता है । २०वीं शती में साधु-साध्वियों द्वारा प्रणीत और अन्य मनीषियों द्वारा प्रणीत संस्कृत जैन काव्यों का अनुशीलन, उनका साहित्यिक

एवं शैलीगत अध्ययन, और उनका वैशिष्ट्य प्रदेय तथा तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन, क्रमशः अध्याय ३, ४, ५ व ६ में किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ से इस शती में संस्कृत में रचे गये जैन साहित्य का एक समग्र तदपि गहन परिशीलन प्राप्त होता है। ग्रन्थकर्ता का श्रम सराहनीय है। पुस्तक श्री राजेश जैन, अध्यक्ष, बाहुबली जीव रक्षा एवं पर्यावरण न्यास, छिन्दवाड़ा, के सौजन्य से प्राप्त हुई जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। मुद्रण की कुछ त्रुटियां हैं जिनका परिमार्जन अगले संस्करण में अभीष्ट है।

पञ्चाल—अंक ११, १९९८; सं० डा० ए० एल० श्रीवास्तव; प्र०—पंचाल शोध संस्थान, ५२/१६, शक्कर पट्टी, कानपुर-२०८००१; पृ० १४६ + १२ + चित्र; मूल्य रु० १००/-

भाग एक में १० शोध निबन्ध हिन्दी में और ११ अंग्रेजी में हैं जो पंचाल क्षेत्र के पुरावशेषों के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्य विविध विषयों पर गवेशणात्मक प्रकाश डालते हैं। भाग दो में पंचाल शोध संस्थान के १२वें अधिवेशन (मई १९९८) की रिपोर्ट और कतिपय ग्रन्थों की उपयोगी समीक्षा के साथ **पञ्चाल** पत्रिका के अंक १ से १० की लेख व लेखक अनुक्रमणिका दी गई है जो विशेष उपयोगी है। पत्रिका के श्रम साध्य सुसम्पादन के लिये डा० ए० एल० श्रीवास्तव साधुवाद के पात्र हैं।

अनेकान्त दर्पण—सं० डा० रतनचन्द्र जैन व प्रा० निहाल चन्द जैन; प्र०—अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)-४७०११३; प्रवेशांक, वर्ष १९९९; पृ० १०८ + चित्र

ब्र. सन्दीप जैन 'सरल' के अध्यवसाय से स्थापित 'अनेकान्त ज्ञान मन्दिर' ने अब शोध संस्थान का रूप ले लिया है जो प्रसन्नता की बात है। संस्थान द्वारा पत्रिका का प्रवेशांक प्रकाशित किया गया है। ३३ शीर्षकों के अन्तर्गत 'अनेकान्त ज्ञान मन्दिर' का और उसके उद्देश्यों एवं कार्यकलापों का परिचय इसमें समाहित है। इस आयोजन से सम्बन्धित सभी धीमान और श्रीमान साधुवाद के पात्र हैं।

सम्यक् विकास—वर्ष १, अंक १ (जन०-मार्च ९९)—प्रबन्ध सम्पादक, श्री प्रकाश पालावत; प्र०—सम्यक् चैरिटेबिल ट्रस्ट, २१, सुफलाम फ्लैट्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद-३८०००९; पृ० ४४ + ४; मूल्य रु० ३०/-.

श्री प्रकाश पालावत के आभार प्रदर्शन और डा. घनानन्द शर्मा 'जदली' के सम्पादकीय के अतिरिक्त ५४ लेख हिन्दी में और ३ अंग्रेजी में, त्रैमासिक पत्रिका के इस विशेषांक में सम्मिलित हैं, तथा कुछ कवितायें और उक्तियां हैं। सभी लेख गम्भीर चिन्तन से प्रसूत हैं, और भारत के आध्यात्मिक पक्ष को एक व्यापक समग्र भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया गया है। आयुर्वेद के आधार से स्वास्थ्य सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी दी गई हैं। यह एक श्रम साध्य प्रयास है जिसके सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए सम्पादक मण्डल और विद्वान लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

SAMBODHI, Vol. XXI, 1997-98–Ed. Dr. J.B. Shah & Dr. N. M. Kansara; pub. L. D. Institute of Indology, Ahmedabad-380009; pp. 188 + 4; price Rs. 100/-

It is a valuable digest of research in Prakrit, Jainology and Indian history and culture, with 10 learned papers in English and 5 in Gujrati. The Reviews and Brief Notices of 30 publications by Dr. Kansara are a valuable addition. Prof. Kanjibhai Patel's report on the Seminar on Ardhamagadhi Jain Agama Literature, held to celebrate birth centenary of Agama Prabhakara Muni Shri Punyavijaiji on Feb. 16-18, 1997, at the L.D. Institute, is also important. Such journals are very useful for research scholars, and the credit goes to Dr. Shah and Dr. Kansara for bringing it out so nicely.

चर्च का भारत में अन्तर्राष्ट्रीय षड़यन्त्र—सं० श्री अधीश कुमार; प्र०—हिन्दू जागरण मंच, उ० प्र०, ११ बी, दारुलशफा, लखनऊ-२२६००१; १९९९; पृ० ३४ + ४; सहयोग राशि रु० २/-

धर्मान्तिरण (मतान्तरण) के विषय में चल रहे विवाद के परिप्रेक्ष्य में यह पुस्तिका ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे कार्यकलापों का तथ्यात्मक खुलासा करती है। पठनीय और उपयोगी है। जैन धर्मावलम्बियों के लिए भी मार्गदर्शक और सचेतक है।

धर्ममंगल—सं० प्रा० सौ० लीलावती जैन, ४/५ भिकम चन्द जैन नगर, पिंप्राले रोड, जलगांव-४२५००१—ने १ फरवरी, १९९९, को १०४ पृ० का गझल विशेषांक निकाला। इसमें श्री लालचन्द हरिश्चन्द जैन, कोष्टी गली, मानवत (परभणी) की जैन धर्म से सम्बन्धित विषयों पर मराठी में रचित गजलों का संग्रह है। पुनः ६ मार्च, १९९९, के अंक में सौ० लीलाबाई हीरा लाल गांधी, जेठी राम भवन, ३६२, द० कसबा, सोलापुर द्वारा मराठी में लिखित सत्संग जिसमें स्व० श्री वीर सागर जी महाराज के प्रवचनों का सार है, प्रकाशित किया गया है। साथ में पूजा पीठिका भी है।

समकालीन मराठी जैन कथा संग्रह के ३ भागों—**पुनीत, परहिदं च कादव्वं** और **गिरनार** का सुसम्पादन श्री श्रेणिके अन्नदाते ने किया है। मराठी कथा साहित्य को इस शताब्दी में जैनों के धर्मोन्मुख कथा अवदान की जानकारी के लिए ये पुस्तकें उपयोगी हैं। प्रकाशक-सुमेरु प्रकाशन, डी-६, राजहंस सोसायटी, तिलक नगर, डोंबिवली (पूर्व)-४२१२०१; वितरक-मराठवाडा ग्रन्थ बिक्री केन्द्र, ३८, तुलसी आर्केड, कनॉट टाऊन सेन्टर, सिडको, औरंगाबाद।

जिन्दगी—ले. श्री सुरेन्द प्रसाद गोयल "गौहर" राजवंशी, हरगोविन्द भवन, चौक हिरन मारान, खालापार, सहारनपुर-२४७००१; पृ० १२८; जुलाई १९९८; मूल्य रु० ५१/-

प्रस्तुत कृति में शायर "गौहर" की १०७ गजलें संकलित हैं जिन्हें उनकी बेटी रेणु ने नागरी लिपि में रूपान्तरित करके हिन्दी पाठकों के लिये सुलभ बना दिया। इन गजलों में जीवन के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टिकोण है—

जो दिया तूने हमें वो कर लिया दिल से कबूल।
जिन्दगी ! हमसे तुझे, अब तो शिकायत कुछ नहीं।।

भाषा सहज और भाव सरल हैं। अभिव्यक्ति में सादगी है। पढ़कर ऐसी अनुभूति हुई—

गो जिन्दगी सरकती रही सरकार की तरह,
ताहम भाव बहते रहे ठण्डी बयार की तरह।

—डा० शशि कान्त

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

नवोदित तीर्थ—योगीन्द्र गिरि

सिद्धोदय, ज्ञानोदय, भाग्योदय, अहो भाग्योदय, चूलगिरि, ऊं गिरि, पुष्प गिरि, नेमगिरि आदि तीर्थों की शृंखला में अब योगीन्द्र गिरि तीर्थ क्षेत्र का उदय हुआ।

"सागवाड़ा (राज.) में सेठों के मन्दिर के पिछवाड़े निर्माणाधीन आदित्य वाटिका के निमित्त से की जा रही खुदाई में एक १७ × ८ फुट का भूतल कक्ष निकला जिसमें आमने-सामने दो आलों में तीन-चौबीसी लघु पाषाण प्रतिमाएं जमा कर स्थापित की हुई थीं। सभी ७२ मूर्तियों को बाहर निकाल कर साफ करने के बाद अभिषेक किया गया। चातुर्मास रत पू. बालाचार्य मुनि श्री योगीन्द्र सागर ने मूर्तियों के लेख पढ़ कर उन्हें ४०० वर्ष प्राचीन बताया। मुनि श्री की प्रेरणा से स्थानीय समाज ने इन मूर्तियों के उचित रख-रखाव की दृष्टि से 'श्री योगीन्द्र गिरि अतिशय क्षेत्र योजना' का प्रोजेक्ट हाथ में लिया है तथा योजना का शुभारम्भ भी स्थानीय बोर्डिंग के सभागार में सात दिवसीय विधानों के साथ क्षेत्र रक्षक मणिभद्र क्षेत्रपाल व घंटाकर्ण महावीर की प्रतिमाओं की स्थापना के साथ कर दिया गया।"

(—जैन गजट, १७ दिसम्बर, ९८)

प्रकाशित समाचार से यह स्पष्ट नहीं है कि योगीन्द्र गिरि अतिशय क्षेत्र का निर्माण समतल भूमि पर किया जा रहा है या किसी टेकरी पर। वैसे राजस्थान की धरती पर छोटी-बड़ी टेकरियों की कमी नहीं है, सागवाडा में भी होगी। जब अतिशय क्षेत्र बनना है तो तीर्थ यात्रियों को अकर्षित करने के लिए अतिशय भी गढ़ लिये जायेंगे ही। वैसे जिन ७२ प्रतिमाओं के रख-रखाव के निमित्त से यह योजना बनाई गई है, उनके एक छोटे से कमरे के दो आलों (ताखों) में रखे मिलने से ही यह स्पष्ट है कि वे अति लघु

आकार की होंगी और उनमें मूर्ति कला के किसी वैशिष्ट्य की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।

पिछले कुछ वर्षों में कतिपय मुनिराजों/आर्यिका माताओं की अनुकम्पा से अनेक नए तीर्थ क्षेत्रों का उदय हुआ है और नित नए क्षेत्रों का निर्माण होता जा रहा है। जिस प्रकार हर सद्गृहस्थ की अपना स्वयं का घर निर्माण करने की साध होती है, उसी प्रकार हमारे अनेक मुनिराज/आर्यिका माता धन संग्रह में सक्रियता की अपनी विलक्षण प्रतिभा का उपयोग कर अपनी प्रेरणा से तथा अपने मार्ग दर्शन में अपने या अपने गुरू के नाम से करोड़ों की लागत से किसी नए तीर्थ का निर्माण करा कर अपना नाम अमर कर जाने की होड़ में लगे हैं। कुछ मुनिराज भूधर कविराय की इस उक्ति को कि "ते गुरु जहं पग धरें, जग में तीरथ जेह" चरितार्थ करने के लिये अपने चातुर्मास स्थल को ही तीर्थ क्षेत्र घोषित कर रहे हैं, करा रहे हैं। काश ये महामुनि अपनी प्रतिभा का उपयोग कल्याणक क्षेत्रों व सिद्ध क्षेत्रों के विकास में, उनको भव्य रूप दिलाने में करते। हमारे शासन देव भगवान महावीर स्वामी की जन्म स्थली वैशाली तथा निर्वाण स्थली पावानगर समुचित विकास के लिए ऐसे ही किसी प्रतिभाशाली सन्त की कृपा दृष्टि की बाट जोह रही हैं।

बिच्छु और विद्वान—एक समाना

श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित शौरसेनी प्राकृत एवं सांस्कृतिक मूल्यों की त्रैमासिकी पत्रिका **प्राकृत विद्या** के विद्वान सम्पादक डा० सुदीप जैन ने, संयुक्त राष्ट्र संघ के गजेटियर में यह पढ़ कर कि बिच्छु विद्वानों का प्रतीक चिन्ह है, इस विषय पर गहन चिन्तन, मन्थन व अध्ययन के फलस्वरूप बिच्छुओं और विद्वानों के कई गुणों में अद्भुत समानता लक्षित की है, यथा—

(१) बिच्छु बहुत स्वाभिमानी होता है, यदि कोई उसे ढक दे, तो वह अपना डंक स्वयं को मार कर आत्म हत्या कर लेता है। वस्तुतः श्रेष्ठ विद्वान भी अप्रतिम स्वाभिमानी होते ही हैं।

(२) बिच्छु अपने हथियार (डंक) को सदैव सावधान, सक्रिय और उन्नत रखता है, तो विद्वान भी अपने प्रमुख अस्त्र बुद्धि बल को सदैव जागरूक एवं क्रियाशील बनाए रखते हुए उसी पर गर्व करता है। धन आदि संसाधन उसे बौद्धिक सामग्री की तुलना में तुच्छ प्रतीत होते हैं।

(३) बिच्छु कभी भी अपने शिकार को खाता नहीं है, अपितु उसका रस चूस कर उसे अक्षत छोड़ देता है। तो विद्वान भी ग्रंथों को अक्षत रख कर उनके हार्द को पूर्णतः आत्मसात करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं।

(४) बिच्छु सदैव धूप, भीड़-भाड़, कोलाहल से दूर शांत, शीतल, एकान्त स्थल में निवास करना पसन्द करता है। तो सच्चा विद्वान भी फालतू इधर-उधर की भाग-दौड़, भीड़-भड़क्का व तनाव के वातावरण से दूर रह कर शांति पूर्वक, एकान्त स्थल में अपनी ज्ञान साधना करते रहना चाहता है।

डा० सुदीप जी को बिच्छु और विद्वान में केवल एक ही अन्तर दिखाई पड़ा है और वह यह है कि जबकि विद्वान संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जाति का प्राणी है, बिच्छु तीन इन्द्रिय तिर्यञ्च गति का कीट है। **प्राकृत विद्या** के जुलाई-सितम्बर १९९८ के अंक के आवरण पृष्ठ को बिच्छु के चित्र से अलंकृत किया गया है तथा आवरण पृष्ठ दो पर विद्वान सम्पादक जी ने चित्र के बारे में उपर्युल्लिखित जानकारी दी है। हम डा० सुदीप जी को उनकी इस अभूत-पूर्व गवेषणा के लिये तथा विद्वानों को उनकी हैसियत बता देने के लिये बधाई देते हैं। चूंकि वे स्वयं एक श्रेष्ठ विद्वान हैं उन्होंने बिच्छु के उपर्युल्लिखित गुण स्वयं अपने में अवश्य ही परिलक्षित किये होंगे।

अपनी गवेषणा के उपरोक्त निष्कर्ष की जानकारी देने के बाद विद्वान सम्पादक जी लिखते हैं कि उन्हें "एक स्वप्न हुआ कि नी० एवं ने० द्वय (जिनकी राशि वृश्चिक ही है) पिछले जन्म में बिच्छु थे, मध्य प्रदेश में मनुष्य जन्म पा कर मुनियों को डंक मारते-

फिरते हैं, अतः मुनियों को इन से बच कर रहना चाहिये" [कदाचित् इन विद्वत्द्वय की किसी आलोचना का दंश डाक्टर साहब के किसी अधिक श्रद्धेय को ऐसी पीड़ा दे गया जिसका शमन क्षमा याचना से भी नहीं हुआ तथा गहन क्षोभ की मानसिकता में डा० साहब को इस विषय पर इतना अध्ययन, चिन्तन, मन्थन करना पड़ा।]

हमें ऐसा लगता है कि विद्वान सम्पादक जी ने इन विद्वत्द्वय के विषय में अपनी बात कहने के लिए स्वप्न का सहारा केवल शालीनता वश लिया है तथा वस्तुतः इनकी वृश्चिक प्रवृत्ति उनके प्रत्यक्ष ज्ञान में ही झलकी है। अब या तो उन्हें अपने पिछले जन्म का जाति स्मरण हो गया है जब ये विद्वत्द्वय उनके निकट के बन्धु-बांधव रहे होंगे। या फिर कदाचित् उनके अमीम पुण्योदय से तथा पूज्य आचार्य श्री के चरण सानिध्य में रहने तथा सभी किस्म के दिगम्बर वेशधारी मुनिराजों में अटूट श्रद्धा रखने के निमित्त से उन्हें अकस्मात देशावधिज्ञान की उपलब्धि हों गई हो।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि डा० सुदीप जी ने अपनी गवेषणा के सभी निष्कर्षों को कदाचित् उजागर नहीं किया है क्योंकि उनसे (भूल वश या संकोच वश) वृश्चिक वृत्ती विद्वानों की उस बड़ी प्रजाति का उल्लेख छूट गया है जों किन्ही निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर अपने (मूक या मुखर) अनुमोदन-समर्थन से उपगूहन के नाम पर श्रमणाचार की शिथिलोन्मुख प्रवृत्तियों को प्रगति देने में अपना महती योगदान कर रहे हैं। हम डा० सुदीप जी को उनकी अभूत-पूर्व खोज के लिए पुनः बधाई देते हैं।

सेलो फोन से बात करते मुनि श्री

अभी कुछ दिन पूर्व लखनऊ से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक टाइम्स आफ इण्डिया के मुख पृष्ठ पर एक दिगम्बर जैन मुनि का फोटो चित्र प्रकाशित हुआ था जिसमें मुनि श्री को जयपुर नगर में एक सड़क के किनारे बैठे हुए सेलो फोन पर बात करते हुए देखा जा सकता था। पत्र ने फोटो पर अलग से कोई टिप्पणी नहीं की थी।

दिगम्बर जैन सन्त पूर्ण अपरिग्रही होते हैं। एक हाथ में करुणा का उपकरण मयूर पिच्छी तथा दूसरे हाथ में शुचिता का

उपकरण कमण्डलु रखने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई परिग्रह नहीं होता, यहां तक कि तन पर लंगोटी भी नहीं होती।

महान प्रभावक तर्क-चूड़ामणि दिगम्बर जैनाचार्य महाकलंक-देव के विषय में एक कथा विख्यात है कि दीक्षा पूर्व उन्होंने बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन करने हेतु किसी बौद्ध विहार में अपने अनुज निष्कलंक सहित छद्म नाम से प्रवेश ले लिया। विद्याध्ययन के दौरान विहार के प्रमुख स्थविर को सन्देह हो गया कि ये विद्यार्थी बौद्ध न होकर कहीं जैन धर्मावलम्बी तो नहीं हैं। इनकी परीक्षा लेने को उसने एक अर्हन्त प्रतिमा उनके सन्मुख डाल दी तथा उन्हें उस प्रतिमा को लांघ जाने का आदेश दिया। अकलंक देव फुर्ती से प्रतिमा पर एक धागा डाल कर उसे लांघ गये क्योंकि धागे के परिग्रह से युक्त हो कर वह प्रतिमा अर्हन्त भगवान की नहीं रह गई थी।

इस कथा से हमारे वर्तमान के कतिपय मुनिराजों ने यह शिक्षा तो ग्रहण कर ली कि शरीर पर लंगोटी धारण करने से ही अपरिग्रह महाव्रत का उल्लंघन होता है पर चूंकि किसी प्राचीन कथा या शास्त्र में पंखा, कूलर, हीटर, टेलीफोन आदि के निषेध का उल्लेख नहीं मिलता (यह दूसरी बात है कि भौतिक सुख सुविधा के ये सभी उपकरण तब अकल्पनीय थे) अतः उनकी दृष्टि में कदाचित् इस प्रकार के उपकरणों के उपभोग से उनके अपरिग्रह महाव्रत को कोई दोष नहीं लगता। हमने एक आचार्य श्री को चातुर्मास के दौरान दो-दो टेलीफोनों पर भक्त जनों से वार्तालाप में अति व्यस्त रहते हुए स्वयं देखा है। सुना है अब प्रगति करके वे मोबाइल टेलीफोन भी रखने लगे हैं। उक्त फोटो चित्र को देखने वालों को यह विचित्र एवं उपहासास्पद तो लगेगा ही कि जो सन्त लंगोटी का भी परिग्रह नहीं रखता वह सैलो फोन जैसे महंगे उपकरण का उपभोग करता है जिसका उसकी श्रमण चर्या से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। हमें नहीं मालूम कि ये मुनि श्री कौन हैं, एकल विहारी हैं कि किसी आचार्य संघ में है। जयपुर की जागरुक समाज को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

विद्वत् परिषद के चुनाव और विभाजन

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पद के परोक्ष मतदान प्रणाली से सम्पन्न किए गए चुनाव में निर्वाचन अधिकारी प्राचार्य कुन्दन लाल जी द्वारा दि० ३०-१०-९८ को प्रो० राजाराम ७२ मतों के अन्तर से विजयी घोषित किए गये। (उन्हें १६१ मत तथा दो अन्य अभ्यर्थी डा० शीतल चन्द जैन को ८९ तथा डा० सुदर्शन लाल जैन को ९ मत प्राप्त हुए थे।) चुनाव परिणाम से असन्तुष्ट गुट की ओर से डा० सुरेश चन्द्र जैन द्वारा दि० १-११-९८ को अतिशय क्षेत्र तिजारा में विद्वत् परिषद की साधारण सभा और कार्यकारिणी की बैठक आयोजित करके उसमें डा० रमेश चन्द्र जैन (बिजनौर) अध्यक्ष, डा० सुरेश चन्द्र उपाध्यक्ष डा० शीतल चन्द्र जैन (जयपुर) मन्त्री, डा० कमलेश कुमार (वाराणसी) प्रकाशन मन्त्री व अन्य पदाधिकारी निर्वाचित किये गये।

इधर डा० राजाराम वाले गुट ने (जिसे निवर्तमान अध्यक्ष, डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री तथा निवर्तमान मन्त्री, डा० सुदर्शन लाल का भी समर्थन प्राप्त है) दि० २९-११-९८ को जैन बालाश्रम नई दिल्ली में परिषद की कार्यकारिणी एवं साधारण सभा की बैठक आयोजित करके तिजारा में १-११-९८ को सम्पन्न हुई साधरण सभा व कार्यकारिणी की बैठक को "अनधिकृत, अवैध और विधान के प्रतिकूल" घोषित करते हुए उसमें लिए गये निर्णयों और कार्यवाही को "निष्प्रभावी व अनुचित" करार कर दिया तथा इसमें नवीन पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी सदस्यों का भी चयन कर लिया गया। इस दैठक की अध्यक्षता निवर्तमान अध्यक्ष डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने ही की थी। इसमें पं० प्रकाश चन्द्र हितैषी तथा डा० सुदर्शन लाल को उपाध्यक्ष, डा० सत्य प्रकाश (दिल्ली) को मन्त्री, श्री अखिल बंसल को प्रकाशन मन्त्री व अन्य पदाधिकारियों के अतिरिक्त १८ सदस्यीय कार्यकारिणी का भी चयन किया गया। साथ ही संविधान संशोधन समिति, एकता समिति, पुरस्कार समिति,

प्रकाशन समिति, महिला समिति तथा स्वर्ण जयन्ती समिति का भी गठन किया गया।

हमें नहीं मालूम कि तिजारा की बैठक में परिषद के कितने सदस्यों ने भागीदारी की थी पर **विद्वत् सन्देश** में प्रकाशित २९-११-९८ की बैठक के कार्यवाही विवरण के अनुसार उक्त बैठक में ५८ सदस्यों की उपस्थिति अंकित की गई थी जिससे इतना तो प्रतीत होता ही है कि डा० राजाराम के गुट को काफी सदस्यों का समर्थन प्राप्त है।

हमने डा० रमेश चन्द्र जी से विद्वत् परिषद के इन दो समानान्तर निर्वाचनों के सम्बन्ध में उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही थी जो उन्होंने निम्न शब्दों में व्यक्त की है—

"विद्वत् परिषद दो हो गई हैं। डा० राजाराम जी ने पृथक विद्वत् परिषद का गठन कर लिया है। दो होने के प्रमुख कारण हैं—१. चुनाव में अवैध रूप से मत पत्रों का डा० राजाराम जी को उपलब्ध कराया जाना।.....वे अपने द्वारा करायी गयी अवैध मत पूर्ति को नकार नहीं सकते।

२. डा० राजाराम जी द्वारा टोडरमल स्मारक से सम्बन्धित विद्वानों को अनुचित बढ़ावा व कार्यकारिणी में उनका वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न।

मैंने एकता का बहुत प्रयास किया किन्तु वे तैयार नहीं हैं।... विद्वत् परिषद के दो टुकड़े होना सभी के खेद और चिन्ता का विषय है। कहीं मिलने की बात होती है तो दूसरा पक्ष पहुंचता नहीं.....**वीतराग वाणी** सहित कुछ पत्र-पत्रिकाओं में जो उपदेश छपा है वह एकांगी और पक्षपात पूर्ण है। कोई भी संस्था एक व्यक्ति की मनमानी पर नहीं चल सकती, विभाजन के लिए डा० राजाराम जी पूरे दोषी हैं। वे समन्वय की किसी बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं.....।"

डा० रमेश चन्द्र जी द्वारा लगाया गया प्रथम आरोप गम्भीर है तथा यदि इसमें सत्यता है तो यह अत्यन्त खेद जनक स्थिति दर्शाता है जिसकी अपेक्षा शास्त्र मर्मज्ञ विद्वानों के नेताओं से कदापि

नहीं की जाती, भले ही इस प्रकार के हथकंडे क्षुद्र राजनीतिज्ञों द्वारा सत्ता हथियाने के लिए अपनाए जाते हों। तथापि जितने भारी मतों के अन्तर से डा० राजाराम विजयी घोषित किये गये हैं उससे इसकी सम्भावना कम ही प्रतीत होती है कि कुछ मत पत्रों की हेरा-फेरी से निर्वाचन परिणाम प्रभावित हुआ हो।

डा० रमेश चन्द्र जी द्वारा लगाए गए दूसरे आरोपों का औचित्य ही कुछ समझ में नहीं आता। उनकी अध्यक्षता वाली परिषद के पदाधिकारियों आदि की घोषणा तो दि० १-११-९८ को तिजारा में सम्पन्न बैठक में ही कर दी गई थी जबकि डा० राजाराम की अध्यक्षता वाली कार्यकारिणी व पदाधिकारियों का चुनाव दि० २९-११-९८ को जैन बालाश्रम, नई दिल्ली में हुई बैठक में सम्पन्न हुआ था, अतः लगभग एक मास बाद हुए इस चुनाव से उनको असन्तोष होना विचित्र ही लगता है। वैसे भी, विद्वत् परिषद के संविधान में सभी सदस्यों के विभिन्न पदों पर चयन के लिए समान अधिकार ही होंगे। यदि विद्वत् परिषद के कर्णधार किसी संस्था विशेष से जुड़े विद्वानों को परिषद के लिए खतरनाक मानते हों तो उन्हें विद्वत् परिषद के संविधान में समुचित संशोधन पारित करा कर उक्त वर्ग के विद्वानों के लिये परिषद की सदस्यता के दरवाजे ही बन्द कर देना चाहिये।

यद्यपि दोनों गुटों ने विभाजन के बिवाद को समाप्त करने के लिए एकता के पूरे प्रयास करने का दावा किया है तथा असफलता के लिए प्रतिपक्षी दल को ही दोषी करार कर रहे हैं, हमारी समझ में ये प्रयास बहुत कुछ ऐसे ही प्रतीत होते हैं जैसे दो पड़ोसी देश राजनीतिक एकता के प्रयास करते हैं पर अपनी ही शर्तों पर। झुकने को कोई तैयार नहीं होता। अब जबकि डा० राजाराम जी के गुट वाली परिषद की साधारण सभा ने एकता के लिए अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध करने के लिए एकता समिति का ही गठन कर दिया है, डा० रमेश चन्द्र जी ने पू० आ० श्री विद्यानन्द मुनि जी को विवाद समाप्त करने के लिए पंच बनाने का संकेत दिया है। हमारी समझ

में वीतरागी सन्तों को किसी ऐसे झमेले में डालने से उनकी गरिमा को क्षति पहुंच सकती है। विकल्प के रूप में हमारा सुझाव है कि दोनों समानान्तर विद्वत् परिषदों ने कम-से-कम ६ वरिष्ठ विद्वानों को अपना संरक्षक चुना है जिससे प्रतीत होता है कि उन्हें दोनों गुटों के नेताओं का विश्वास प्राप्त है, अतः हमारी समझ में उनमें से किन्हीं तीन को दोनों परिषदों के सूत्रधार नेता पंच बना कर इस विवाद को हल करने को सौंप दें तथा उनके निर्णय को स्वीकार करने का वचन दे दें। अनेकान्त दर्शन के मर्मज्ञ विद्वानों से सौहार्दपूर्वक सभी विवादों को सुलझा लेने की अपेक्षा की जाती है। दिगम्बर जैन समाज में पहले ही विद्वानों के दो संगठन—शास्त्रि परिषद और विद्वत् परिषद हैं। अब दो विद्वत् परिषदों का कोई औचित्य नहीं है।

विद्वत् परिषद का विभाजन दुर्भाग्यपूर्ण है। जब तक इस स्थिति को न सुधार लिया जाए, स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मनाना भी खाना-पूरी करना ही लगेगा।

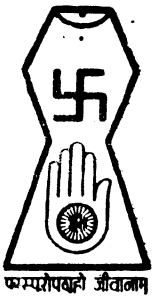

अभिनन्दन

साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीर जी, की संस्थापिका **ब्र० कमलाबाई जी** को **रोटरी इण्डिया एवार्ड १९९८** से सम्मानित किया गया। पुरस्कार में प्राप्त राशि से ब्र० जी ने नारी शिक्षा एवं कल्याण हेतु एक ट्रस्ट बनाने की घोषणा की। पुनः, विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर विश्व धर्म संसद ने राजस्थान में बालिका शिक्षा क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान हेतु उन्हें स्वर्ण पदक और प्रमाण पत्र प्रदान कर **विश्व गौरव सम्मान** से विभूषित किया।

कु० आरती जैन को **जैन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में पं० सदासुखदास जी कासलीवाल के व्यक्तित्व एवं कृतृत्व का अनुशीलन** पर डा० हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की।

डा० (श्रीमती) विद्यावती जैन, आरा को उनके शोध-प्रबन्ध "सन्त कवि देवीदास और उनके अद्यावधि अप्रकाशित हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन" पर बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर ने डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की तथा वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, ने उन्हें यूनीवर्सिटी प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति प्रदान की।

विदुषी **डा० (श्रीमती) सरयू विनोद दोशी** को इस वर्ष भारत सरकार द्वारा **पद्म श्री** की उपाधि से अलंकृत किया गया।

हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार तथा गांधीवादी चिन्तक **श्री यशपाल जैन को निष्काम साधक** नामक ८५० पृष्ठों का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर सार्वजनिक रूप से सम्मानित किया गया।

बीना में जैन क्लब परिसंघ सतना के तत्त्वावधान में वयोवृद्ध विद्वान **डा० दरबारी लाल कोठिया** को **स्व० जगदीश राय स्मृति सम्मान** से सम्मानित किया गया।

तिजारा (अलवर, राजस्थान) में श्रुत संवर्धन संस्थान, मेरठ द्वारा आयोजित राष्ट्रीय विद्वत् सम्मान समारोह में डा० फूल चन्द्र

जैन 'प्रेमी' (वाराणसी), प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन (फिरोजाबाद), तथा डा० चेतन प्रकाश पाटनी (जोधपुर) को **जैन रत्न** की मानद उपाधि तथा **आचार्य सुमतिसागर स्मृति पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर बिहार के महामहिम राज्यपाल श्री सुन्दर सिंह भण्डारी द्वारा **आचार्य शान्ति सागर छाणी स्मृति ग्रन्थ** का भी विमोचन कर उसके सम्पादकों को भी सम्मानित किया गया।

जैन विद्या के मनीषी विद्वान **डा० देवेन्द्र कुमार जैन शास्त्री को अ० भा० दि० जैन महासमिति के ज्ञान अवार्ड** तथा अहिंसा इन्टरनेशनल के **लाला डिप्टीमल जैन अहिंसा इन्टरनेशनल पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा भगवानदास शोभालाल जैन विशेष शाकाहार पुरस्कार डा० नेमी चन्द जैन (इन्दौर) को, **भगवान दास शोभा लाल जैन शाकाहार पुरस्कार** श्री सुरेश चन्द जैन (जबलपुर) को, **रघुबीर सिंह जीवरक्षा पुरस्कार** मिया मोहम्मद शफीक खान (सागर) को तथा **गोल्डेन जुबली फाउंडेशन पत्रकारिता पुरस्कार** डा० नीलम जैन (सहारनपुर) को प्रदान किया गया।

डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी को उनकी कृति "जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य" पर रतन लाल बोबरा की स्मृति में श्रीमती शान्ता देवी, श्री सूरज मल, इन्दौर द्वारा कुन्द-कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में स्थापित **ज्ञानोदय पुरस्कार** प्रदान किया गया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने 'अर्हत् वचन' में वर्ष १९९८ में प्रकाशित शोधपूर्ण आलेखों के लिये श्री दीपक जाधव (बड़वानी), प्रो० एम० डी० बसन्तराज (मैसूर) तथा डा० अशोक के० मिश्र (फैजाबाद) को पुरस्कृत किया।

जैन प्रज्ञा प्रकाशन भोपाल, वाग्भारती ट्रस्ट मैनपुरी एवं सकल दि० जैन समाज डूंगरपुर ने अनेकान्त ज्ञान मन्दिर बीना (सागर) के युवा मन्त्री शैलेन्द्र जैन को **वाग्भारती पुरस्कार ९८** प्रदान कर सम्मानित किया। श्री शैलेन्द्र जैन ने राशि को अपनी ओर से द्विगुणित कर अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, बीना, को प्रदान करने की घोषणा की।

बड़ौदा में १३-१५ अक्टूबर, १९९८ को सम्पन्न अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन, पूना के ३९वें अधिवेशन में सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के प्रोफेसर एवं डीन **डा० प्रेम सुमन जैन** को सम्मेलन की कार्यकारिणी का सदस्य और प्राकृत एवं जैन धर्म खण्ड का राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

दिल्ली, राजस्थान और मध्य प्रदेश में नवम्बर, १९९८ में सम्पन्न विधान सभा आम चुनावों में दिल्ली में एक (श्री राजेश जैन), राजस्थान में ९ (जिनमें से सर्वश्री चन्दनमल बैद, शांति धारीवाल और प्रद्युम्न सिंह बोहरा मन्त्री बने) तथा मध्य प्रदेश में ७ (जिनमें से श्री नरेन्द्र नाहटा कैबीनेट मन्त्री बने) **जैन विधायक** निर्वाचित हुये।

प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली, तथा अन्य शोध संस्थानों की गम्भीर अवनत अवस्था को देखते हुए बिहार सरकार द्वारा उनके उन्नयन एवं विकास हेतु जो आठ सदस्यीय विशेषज्ञ समिति गठित की गई है उसमें प्रो० डा० राजाराम जैन (आरा) को भी सदस्य मनोनीत किया गया है। उन्हें १४ मार्च को नई दिल्ली में **आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार** से भी सम्मानित किया गया।

श्री साहू रमेश चन्द्र जैन, नई दिल्ली, २७ दिसम्बर, १९९८ को अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के पुनः अध्यक्ष चुने गये।

७ मार्च, १९९९, को अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ में संपन्न जैन मिलन, लखनऊ की आम बैठक में सर्वसम्मति से **वीर नरेश चन्द्र जैन**, राजेन्द्र नगर, को पुनः अध्यक्ष तथा **वीर नलिन कान्त जैन**, चारबाग, को मन्त्री निर्वाचित किया गया।

श्री सोहनराज (एस० पी०) छाजेड़ को वर्ष १९९९-२००० के लिये इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स ऑफ इण्डिया, मुम्बई का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

पर्यावरण के संरक्षक और पशुओं के कल्याण के लिये उल्लेखनीय योगदान देने के लिये केन्द्रीय पर्यावरण राज्य मन्त्री **श्रीमती मेनका गांधी** को इस वर्ष महावीर जयन्ती पर चेन्नई में भगवान महावीर फाउंडेशन द्वारा **महावीर अवार्ड** के लिये चुना गया।

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, श्रवणबेलगोला को पी-एच० डी० उपाधि के शोध कार्य हेतु मैसूर विश्वविद्यालय ने मान्यता प्रदान कर दी है।

उपरोक्त सभी का उनकी उपलब्धि पर **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना प्रेषित करता है।

समाचार विविधा

जैन दर्शन और धर्म पर अध्ययनशाला

भोगीलाल लहेरचंद इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, दिल्ली द्वारा ३ अक्टूबर से १७ अक्टूबर, १९९८ तक एक १५ दिवसीय अध्ययन शाला 'जैन दर्शन और धर्म' विषय पर आयोजित की गई जिसमें ३५ वरिष्ठ अध्येताओं एवं १२ प्रख्यात विद्वानों ने क्रमशः अध्ययन एवं अध्यापन के लिये भाग लिया।

प्राकृत पुव्वागम की परम्परा

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला में २-३ जनवरी, १९९९ को प्राकृत भाषा की 'पुव्वागम की परम्परा' राष्ट्रीय विचार गोष्ठी श्रवणबेलगोला के कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक जी की अध्यक्षता में हुई। इसमें जैन आगमों की परम्परा और १२ अंग व १४ पूर्वों के बारे में विद्वानों द्वारा विस्तृत चर्चा की गई।

उमास्वाति स्वामी पर अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी

भोगीलाल लहेरचंद इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, दिल्ली के तत्वावधान में ४-६ जनवरी, १९९९ को 'आ० उमास्वाति और उनका अवदान' पर एक त्रिदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें देश के अनेक मूर्धन्य विद्वानों के साथ-साथ जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड और अमेरिका से पधारे विद्वानों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये। संगोष्ठी का उद्घाटन प्रख्यात विधिवेत्ता डा० एल० एम० सिंघवी ने किया और इसमें २१ शोध पत्रों के वाचन और उन पर गम्भीर चर्चा के साथ ४ विशेष व्याख्यान भी हुए।

काउन्सिल ऑफ जैन इन्स्टीट्यूट

सम्प्रदाय निरपेक्ष मात्र जैनत्व के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु 'काउन्सिल ऑफ जैन इन्स्टीट्यूट' की स्थापना हुई है जो अहमदाबाद में डा० सागर मल जैन, डा० प्रेम सुमन जैन एवं डा० शेखर चन्द जैन के मार्गदर्शन में काम करेगी। इसका उद्देश्य विश्व में जैन रिसर्च के कार्य को अंजाम देना तथा आधुनिक संचार माध्यमों से पूरे विश्व के शोध केन्द्रों को रिसर्च की पूरी जानकारी इन्टरनेट पर उपलब्ध कराना है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में जैन चेयर की स्थापना

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान द्वारा भ० ऋषभदेव के निर्वाणोत्सव पर १६-१७ जनवरी को 'भगवान ऋषभदेव : शिक्षा एवं दर्शन' विषय पर दो-दिवसीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री एम० एल० रंगा ने जैन धर्म के अध्ययन तथा उसके प्रचार-प्रसार हेतु उक्त संस्थान में श्री गुप्ति-सागर शोध संस्थान नाम से एक जैन चेयर की स्थापना की घोषणा की।

भुवनेश्वर में खारवेल महोत्सव एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी

ऋषभदेव फाउण्डेशन, नई दिल्ली तथा एडवांस सेन्टर फॉर इण्डोलाजिकल स्टडीज, भुवनेश्वर के संयुक्त तत्वावधान में भुवनेश्वर में भ० ऋषभदेव के निर्वाणोत्सव के अवसर पर १६-१८ जनवरी को एक त्रिदिवसीय खारवेल महोत्सब एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि उड़ीसा के महामहिम राज्य-पाल श्री सी० रंगराजन ने भारतीय संस्कृति पर जैन धर्म का व्यापक प्रभाव स्वीकारते हुए और उसे उसका अभिन्न अंग मानते हुए कहा कि उड़ीसा में उसका अत्यन्त गौरवशाली इतिहास रहा है। ईसा पूर्व दूसरी शती में सम्राट खारवेल कलिंग का एक ऐसा प्रतापशाली जैन सम्राट था जिसने प्रायः सारे भारत को एक सूत्र में बांध कर कल्याणकारी शासन की स्थापना की थी। गोष्ठी में देश भर से आये तीस से अधिक प्रख्यात विद्वानों तथा पुरातत्वविदों के शोध-

पत्रों का वाचन हुआ जिनमें खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख पर अधिकारी विद्वान डा० शशि कान्त, सम्पादक शोधादर्श, का आलेख भी था। इस अवसर पर उड़ीसा में जैन कला, शिल्प, पुरातत्त्व तथा सम्राट खारवेल के कार्यों को दर्शाने वाली प्रदर्शनी भी लगाई गई।

क्रान्तिकारी श्री अर्जुन लाल सेठी

श्री हजारी मल बांठिया, कानपुर, ने सूचित किया है कि श्री अर्जुन लाल सेठी के दौहित्र श्री योगेन्द्र कुमार रावल, I E ६५, व्यास कालोनी, बीकानेर-३३४००१, अपने पास तथा राजस्थान के राजकीय अभिलेखागार में उपलब्ध सामग्री के आधार पर क्रान्तिकारी श्री अर्जुन लाल सेठी के सम्बन्ध में प्रबन्ध तैयार करवा रहे हैं।

जैन एकता मंच की स्थापना

बड़ौत में १४ मार्च को दिगम्बर, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी सम्प्रदायों के नवयुवकों ने 'जैन एकता मंच' की स्थापना की।

दि० जैन समाज की शीर्ष राष्ट्रीय संस्थाओं की कोर्डिनेशन मीटिंग

२१ मार्च को दिल्ली में श्री गजराज गंगवाल के निवास पर भारतवर्षीय (धर्म संरक्षिणी) दिगम्बर जैन महासभा, दिगम्बर जैन महासमिति, दिगम्बर जैन परिषद तथा दक्षिण भारत जैन सभा के अध्यक्षों और महामंत्रियों की एक संयुक्त बैठक श्री निर्मल कुमार सेठी की अध्यक्षता में हुई। बैठक में जिन बिन्दुओं पर मुख्यतया चर्चा हुई और निर्णय लिये गये वे हैं—जैन समाज को अल्पसंख्यक का अधिकार दिलाना; भ० महावीर की २६००वीं जयन्ती के कार्यक्रम; २८ फरवरी, ९९ को दिल्ली में प्रधानमन्त्री द्वारा उद्घाटित महावीर मेमोरियल की गतिविधियों एवं प्रबन्ध व्यवस्था में दि० जैन समाज की सहभागिता; सन् २००१ की जनगणना में जैनों की संख्या ठीक आने की कार्य योजना; दिनांक २४-५-९८ को जिस मन्दिर में जो पूजा पद्धति लागू थी उसमें परिवर्तन न किया जाय तथा जैन मन्दिरों को आयकर विभाग से प्राप्त नोटिसों के सन्दर्भ में जानने योग्य कानूनी बातों का सर्कुलर निकालने व स्थानीय स्तर पर चार्टर्ड एकाउन्टेन्टों से सलाह लेने का परामर्श।

दिल्ली–श्री महावीर जी डी० टी० सी० बस शुरू

दिल्ली और श्री महावीर जी के बीच प्रतिदिन चलने वाली बस सेवा जो काफी समय से बन्द थी, १ फरवरी से पुनः प्रारम्भ हो गई है। यह बस प्रतिदिन रात्रि १० बजे सराय कालेखां बस अड्डे से चल कर प्रातः ५ बजे श्री महावीर जी पहुंचेगी और वहां से भी रात्रि १० बजे चल कर प्रातः ५ बजे दिल्ली पहुंचेगी। किराया ११० रुपये है।

अमरकण्टक में भ० आदिनाथ की अष्ट धातु की विशाल प्रतिमा

दुर्ग के उद्योगपति श्री बाबू लाल जैन 'विद्याश्री' के सहयोग से लगभग ४० लाख रुपये की लागत से निर्माणरत भ० आदिनाथ की अष्ट धातु की २४ टन वजनी विशाल पद्मासन प्रतिमा जिसकी ऊँचाई ११ फीट, चौड़ाई ९ फीट और मोटाई ६ फीट ३ इन्च है, दिगम्बर जैन सर्वोदय तीर्थ अमरकण्टक में सबसे ऊँची पहाड़ी पर ३ फीट ६ इन्च आकार के धातु के कमल पर स्थापित की जाएगी ताकि श्रवणबेलगोल के गोम्मटेश्वर बाहुबलि की तरह, वह दूर से दृष्टिगोचर हो सके। जबलपुर के मूर्तिकार श्री जगदीश परिहार ने मूर्ति का माडल तैयार किया और अष्ट धातु से ढलाई कानपुर-उन्नाव के मोहन स्टील कारखाने में हुई।

काकन्दी, कहाऊं और पावा नगर

श्री बलबीर सिंह जैन, मन्त्री, दिगम्बर जैन महासमिति, गोरखपुर सभांग ने सूचित किया है कि दिनांक २०-११-९८ को काकन्दी (जनपद-देवरिया), जो पुष्पदन्त भगवान की जन्मस्थली है, पर जन्म कल्याणक का आयोजन पारस नाथ दिगम्बर जैन सोसायटी, गोरखपुर द्वारा सम्पन्न हुआ जिसमें गोरखपुर, देवरिया, कसया एवं आस-पास के अन्य ग्रामों व नगरों से तथा लखनऊ से काफी संख्या में जैन यात्री सम्मिलित हुए। वहां से वे कहाऊं (कुमकुम ग्राम) भी गये जहां १५०० वर्ष प्राचीन मानस्तम्भ विद्यमान है। अगले दिन यात्री संघ पावा नगर (फाजिल नगर) जनपद-पडरौना में श्री भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण भूमि पहुंचा और वहाँ अभिषेक,

पूजा-पाठ आदि सामूहिक रूप से करने के बाद मन्दिर में एक अखण्ड ज्योति मन्त्र विधान के उच्चारण से स्थापित की गई। पावा नगर पर निर्माणाधीन जल मन्दिर व अन्य ऐतिहासिक टीलों का भी उन्होंने दर्शन किया। पावा नगर के बुद्धिजीवी प्राचीन इतिहासज्ञ विद्वानों से भगवान महावीर की निर्वाण-स्थली पावा नगर के विषय में चर्चा भी हुई। लखनऊ जैन समाज ने वहां यात्रियों की सुविधा हेतु बिस्तर, बर्तन एवं अन्य उपकरण दान देकर सहयोग किया।

श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार ९९

प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर द्वारा जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान प्रदान करने वाले विशिष्ट विद्वानों को पाँच श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार देने हेतु विद्वानों/सामाजिक कार्यकर्ताओं/संस्थाओं से निर्धारित प्रस्ताव-पत्र पर प्रस्ताव ३१ मई, १९९९ तक आमन्त्रित किये गये हैं। साथ ही सराक क्षेत्र में किये जाने वाले उत्कृष्ट सामाजिक कार्य अथवा सराकोत्थान हेतु जन-जागृति उन्पन्न करने के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु एक स्वतन्त्र पुरस्कार के लिये भी प्रस्ताव सादे कागज पर सराकोत्थान हेतु किये गये समस्त कार्यों के सप्रमाण विवरण सहित आमन्त्रित किये गये हैं। नियमावली आदि प्राप्त करने तथा प्रस्ताव भेजने का पता है—श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार समिति, द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, ५८४, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर-४५२००१।

लखनऊ में महावीर जयन्ती

महावीर जयन्ती की पूर्व संध्या पर २८ मार्च को जैन मिलन (पश्चिम शाखा) लखनऊ द्वारा बालागंज में उक्त शाखा के अध्यक्ष श्री आर० के० जैन के निवास बालागंज में एक सभा हुई। मुख्य अतिथि भारतीय जैन मिलन के उपाध्यक्ष वीर राजेन्द्र कुमार जैन और मुख्य वक्ता श्री बृज लाल थे। जैन मिलन लखनऊ के उपाध्यक्ष श्री रमा कान्त जैन ने आज के युग की समस्याओं के समाधान हेतु महावीर की शिक्षाओं और उनके अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के सिद्धान्तों की सार्थकता पर प्रकाश डाला। श्रीमती सुषमा जैन,

श्रीमती शारदा जैन तथा बच्चों ने सुन्दर भजन प्रस्तुत किये।

२९ मार्च की प्रातः नगर के विभिन्न मन्दिरों में प्रभातफेरी, ध्वाजारोहण और सामूहिक पूजन कार्यक्रम हुए। विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनाथालयों और अस्पतालों में फल वितरण हुआ। श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा द्वारा भगवान महावीर को सरस संगीतमय श्रृद्धांजलि अर्पित करने का कार्यक्रम हुआ। मुख्य अतिथि जस्टिस वीरेन्द्र कुमार जैन थे। दिन में मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला में भजन, आरती, थाल सजाने, मेंहदी लगाने तथा छोटे बालक-बालिकाओं द्वारा णमोकार मन्त्र पाठन की प्रतियोगितायें हुईं तथा जैन मन्दिर इन्दिरा नगर के सौजन्य से त्रिशलानन्दन वीर प्रभु का पालना झुलाया गया। तदनन्तर वहां से रथ यात्रा निकली जो नगर के विभिन्न मार्गों से होती हुई लाला लाजपतराय पार्क कैसरबाग पहुंची जहाँ पर नगर प्रमुख डा० एस० सी० राय की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें वक्तृता और भजनों आदि के माध्यम से भगवान महावीर को श्रृद्धा सुमन अर्पित किये गये।

इस अवसर पर लखनऊ दैनिक **कुबेर टाइम्स** ने 'स्वयं को पहचानो' तथा दैनिक **प्रतिदिन** ने 'चौबीसवें तीर्थंकर—वर्द्धमान महावीर' शीर्षक से श्री रमा कान्त जैन के लेख तथा Times of India ने अपने Sacred Space कालम में आचारांगसूत्र आदि विभिन्न आगम ग्रन्थों से ली गई कतिपय सूक्तियों आदि का अंग्रेजी रूपान्तर देने के साथ-साथ श्री विवेक जैन का 'A bliss beyond words' प्रकाशित कर भगवान महावीर के प्रति अपनी विनयांजलि अर्पित की।

रविवार ४ अप्रैल को गांधी भवन, लखनऊ में उ० प्र० गांधी स्मारक निधि तथा लखनऊ जैन मिलन के संयुक्त तत्वावधान में भगवान महावीर की २५९८वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष में सभा आयोजित की गई। मुख्य अतिथि उ० प्र० सहकारी सेवा मण्डल के सदस्य श्री मेवा राम और मुख्य वक्ता केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के डा० विजय कुमार जैन थे। भगवान महावीर के जीवन दर्शन और

शिक्षाओं की वर्तमान परिस्थितियों में प्रासंगिकता एवं उपादेयता के सन्दर्भ में डा० कंचन लता सब्बरवाल, डा० विजय कुमार जैन, श्री मेवा राम, डा० शशि कान्त, श्री भैया जी, श्री राम प्यारे त्रिवेदी तथा श्री कैलाश चन्द्र जैन ने सभा को सम्बोधित किया। डा० राका जैन, श्रीमती कामिनी जैन, श्रीमती राज जैन, कु० निखिता, कु० मैत्रेयी, पं० कैलाश चन्द्र "पंचरत्न" और श्री रोहित कुमार जैन ने भावभीने भजन गान प्रस्तुत किये। जैन मिलन के उपाध्यक्ष श्री रमा कान्त जैन ने धन्यवाद ज्ञापन किया और मन्त्री श्री नलिन कान्त जैन ने सभा का संचालन किया। भगवान महावीर के चित्र तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की मूर्ति पर माल्यार्पण एवं पुष्पांजलि अर्पित की गई।

शोक संवेदन

नकुड़ (सहारनपुर) में जन्मे ७७-वर्षीय देश के प्रतिष्ठित अभियन्ता **डा० ओ० पी० जैन** का ५ जनवरी, १९९९, को देहावसान हो गया।

१० जनवरी, १९९९ को वाराणसी में सुप्रसिद्ध विद्वान एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी ८४-वर्षीय प्रो० खुशाल चन्द्र गोरावाला का धर्म-ध्यानपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

२१ जनवरी को सहारनपुर के सुश्रावक श्री प्रद्युम्न कुमार जैन, मालिक जैन स्टेशनरी मार्ट, पंसारी बाजार, का अकस्मात हृदय-गति रुक जाने से निधन हो गया।

जनवरी में ही लखनऊ विश्वविद्यालय में फ्रेन्च भाषा के **प्रोफेसर वी० वी० जैन** का निधन हो गया।

४ फरवरी को क्लीवलैण्ड (अमेरिका) में उपचार हेतु गये जैन समाज के बहुप्रतिष्ठित नेता, प्रमुख उद्योगपति, टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन समूह के अध्यक्ष, भारतीय ज्ञानपीठ एवं भारतवर्षीय श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष ६५-वर्षीय साहू अशोक कुमार जैन का स्वर्गवास हो गया।

७ फरवरी को रांची में वयोवृद्ध समाजसेवी, रायबहादुर हरकचन्द पाण्ड्या नहीं रहे।

२१ फरवरी को इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल, नई दिल्ली में अ० भा० श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ के अध्यक्ष, 'उद्योगरत्न' हरखचन्द नाहटा का देहावसान हो गया।

२७ फरवरी को आरा में श्री जैन सिद्धान्त भवन, देवाश्रम, आरा के श्री सुबोध कुमार जैन की धर्मपरायणा माता जी श्रीमती अनूप सुन्दर बीबी का समाधि-मरण हो गया।

२२ मार्च को अध्यात्म के ज्ञाता भाईश्री शशीप्रभु का भावनगर में आत्मसमाधिपूर्वक महाप्रयाण हो गया।

इसी अवधि में—गुलबर्गा (कर्नाटक) निवासी **शोधादर्श** के आजीवन ग्राहक, साहित्यप्रेमी, अनेक शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं से जुड़े ७३-वर्षीय श्री विद्याचन्द्र गुलाबचन्द्र कोठारी का रक्त कैन्सर का उपचार कराते हुए सोलापुर में निधन हो गया;

जैन जागृति मासिक पत्रिका के सम्पादक ६७-वर्षीय श्री कान्तिलाल फूलचन्द चोरड़िया का पूना में निधन हो गया;

प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान डा० नथमल टांटिया का निधन हो गया;

तथा दिग० जैन मुनि विद्यानन्द शोध संस्थान, बडौत, के निदेशक विद्वद्वर्य डा० प्रेम सागर जैन हमारे बीच नहीं रहे।

उपरोक्त महानुभावों के दिवंगत हो जाने से जैन मनीषा के कतिपय विशिष्ट स्तम्भ अब हमारे बीच नहीं रहे। **शोधादर्श** परिवार सभी दिवंगत के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा को सद्गति एवं शान्ति की प्रार्थना करता है, साथ ही उनके स्वजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

आभार

शोधादर्श-३५ में 'पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन न हो' शीर्षक से श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन की प्रतिक्रिया और उस पर हमारी सम्पादकीय टिप्पणी को पाक्षिक पत्र **वीर** ने अपने २२ दिसम्बर, १९९८ के

अंक में और **धर्ममंगल** (मराठी पाक्षिक) ने अपने १ जनवरी, १९९९ के अंक में प्रकाशित किया। मासिक **तपोधन** ने जनवरी १९९९ के अंक में **शोधादर्श**-३५ से श्री गुलाब चन्द्र जैन के लेख "जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर" को, तथा **शोधादर्श**-२८ से श्री अजित प्रसाद जैन के संपादकीय 'प्रथम इतिहास पुरुष' को मासिक **अध्यात्म-पर्व-पत्रिका** ने अपने फरवरी १९९९ के अंक में स्थान दिया है। —इसके लिये हम उक्त पत्रों के सम्पादकों के प्रति आभारी हैं।

श्री सुनील कुमार जैन, जैन स्टेशनरी मार्ट, पंसारी बाजार, सहारनपुर ने अपने पूज्य पिताजी स्व० श्री प्रद्युम्न कुमार जैन की पुण्य स्मृति में उनकी तेरहवीं पर निकाली गई दान राशि में से सौ रुपये (रु० १००/-) **शोधादर्श** को भेंट किये।

डा० शशि कान्त एवं श्री रमा कान्त जैन ने अपने पूज्य पिता जो इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन के ८८वें जन्म दिन के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु० ५१/- भेंट किये।

आयु० समता देवी सुपुत्री श्री गट्टूलाल जैन अग्रवाल (पचेवर) के संग श्री पारस चन्द जैन सुपुत्र श्री मोती लाल जैन (मण्डावरा-वाले) के शुभ विवाह के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु० ४०/-, और **श्री मुकेश कुमार** सुपुत्र वै० पदम चन्द जैन अग्रवाल (पचेवर) के संग **आयु० टम्मो देवी** सुपुत्री श्री माणक चन्द जैन (चोसरावाले) के शुभ विवाह के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु० ५०/- श्री गट्टूलाल ताराचन्द जैन अग्रवाल (पचेवर) के सौजन्य से भेंट स्वरूप प्राप्त हुए।

श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, शाकाहार प्रचारक, देहली की सुपौत्री एवं श्री ए० पी० जैन, F.C.A., तथा श्रीमती बीना जैन की सुपुत्री **आयु० हिमानी जैन** के श्री अनुरुद्ध कुमार एवं श्रीमती रीटा जैन के सुपुत्र **चि० अमित जैन** के साथ दिनांक २०-२-१९९९ सम्पन्न शुभ विवाह के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु० १००/- भेंट स्वरूप प्राप्त हुए।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त सभी महानुभावों के प्रति अपना आभार प्रकट करता है।

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श-३६ अंक आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। श्री प्रणव देव का "'वीर विनोद' में वर्णित जैन धर्म", कु० नीलम जैन का, "व्यासकृत हरिवंशपुराण एवं जिनसेन कृत हरिवंश में श्री कृष्ण चरित्र" तथा राका जैन का "जीवन्धर चम्पू—एक समीक्षात्मक अध्ययन" लेख पठनीय एवं बिचारणीय हैं। समासतः **शोधादर्श** विविध महत्त्वपूर्ण स्तम्भों को समाविष्ट करता हुआ जैन धर्म एव दर्शन के जिज्ञासु अध्येताओं के लिये एक संग्रहणीय स्तरीय शोध पत्रिका है।

—डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, कोंच (जालौन)

खारवेल पर आपकी प्रतिक्रिया सटीक है।

—डा० अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

प्रस्तुत अंक भी अपनी पूर्व परम्परा के अनुरूप विविधतापूर्ण उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक सामग्री के कारण संग्रहणीय है। 'हिमवन्त-थेरावली' की वास्तविकता से अवगत हुआ।

—श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर

शोध सामग्री से परिपूर्ण यह अंक ज्ञानवर्द्धक होने के साथ-साथ संग्रहणीय भी है।

—डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी, रुड़की

ढेर सारी सामग्री एक पत्रिका में बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से समेटना **शोधादर्श** का एक अनूठा कार्य रहा है। इस दृष्टि से वर्तमान अंक महत्वपूर्ण बातों की जानकारियों और व्यवस्था सम्बन्धी व्यवहारिक कठिनाईयों को बताने व समाधान देने से ओत-प्रोत है। सभी सामग्री किसी-न-किसी दृष्टिकोण से विशिष्टता लिए है।

—श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

'देवी-देवताओं की पूजा-उपासना', 'जीवन की निष्कपटता ही ऋजुता है', 'मन्दिर, मूर्ति और वैराग्यता', 'भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि' एवं 'हमारी आस्थायें और प्रकृति' लेख बहुत ही

उपयोगी एवं संग्रहणीय हैं। सम्पादकीय में 'तीर्थ क्षेत्रों के विकास' के सम्बन्ध में जो विस्तृत समीक्षा कर सुझाव प्रस्तुत किए गये हैं, वे वास्तव में बहुत ही सामयिक एवं व्यवहारिक हैं। अन्य स्थायी स्तंभ सहित्य समीक्षा, अभिनन्दन, समाचार विविधा एवं समाचार विमर्श से बहुत सी नई - नई व उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई। विभिन्न विषयों पर शोध निबन्ध भी प्रशंसनीय हैं। 'जिज्ञासा' के अन्तर्गत विभिन्न पाठकों की जिज्ञासाओं के समाधान का प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है।

–श्री रोहित कुमार जैन, इन्द्रानगर, लखनऊ

शोधादर्श-३६ के सम्पादकीय में आपका तीर्थ-स्थानों सम्बन्धी व्यवस्था का विवेचन अत्यन्त सारगर्भित, दूरदर्शितापूर्ण, आवश्यक है। किन्तु समाज की योग्यता (चारित्रमोह कर्म की स्थिति) इस पर ध्यान दे सकेगी—इसमें संशय है। परिग्रह का त्याग जैसे गृहस्थ व्यक्ति की आत्मा को उस पर पड़े आवरण से (अज्ञान और भ्रम से) मुक्त करता है—क्या समाज के लिये इससे विपरीत परिग्रह बढ़ाने का सिद्धान्त उपादेय है? और सामाजिक परिग्रह (तीर्थ-स्थान और मन्दिरों की सम्पत्ति की प्रारम्भिकता, वृद्धि, सुरक्षा, मुकदमेबाजी, पूजा-पाठ-व्यय) की सब व्यवस्था इस अल्प-संख्यक समाज को शोभा—गौरव के साथ करनी होती है। त्यागी-वर्ग का आहार-विहार-निवास-विज्ञापन-केशलोच-दीक्षादिवस आदि समारोहों का प्रबन्ध भी समाज कर रही है। इतना सामाजिक व्यय का उत्तरदायित्व है तो व्यक्ति न्यायपूर्ण धनोपार्जन से कैसे कर रहा है? क्या नेतागण और समाजाश्रित त्यागी—विद्वत् वर्ग कोई समाधान करने की कृपा कर सकते हैं?

श्रीमती मेनका गांधी (वर्तमान में केन्द्र मन्त्री) ने १९८८ में Illustrated Weekly में मयूर की उसके पंखों के मूल्य के कारण की जाती हुई हत्या से क्षुब्ध होकर एक लेख प्रकाशित किया था कि मयूर दस वर्ष बाद अप्राप्य हो सकता है। उस लेख की फोटो-प्रतियां प्रमुख जैन पत्रों को भेजी गयी थी। पं० पद्मचन्द शास्त्री ने उस

लेख को **अनेकान्त** (अक्टूबर १९८८) में प्रकाशित किया था और अपना लेख भी प्रकाशित किया था। पिच्छी गिरे हुए पंखों से जब मुनिगण स्वयं बना लेते थे—तब अपरिग्रह की प्रतीक थी। अब तो पिच्छी कई हजार रुपये की बनती है और इसके लिए गृहस्थ जिम्मेदार है। इस बदली हुई परिस्थिति में त्यागी-वर्ग को इसके स्थान पर जीवदया का दूसरा उपकरण निश्चय करना उचित होगा।

—श्री सुखमाल चन्द्र जैन, नई दिल्ली

माननीय प्रातः स्मरणीय डा० ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'देवी-देवताओं की पूजा उपासना' काफी ज्ञानवर्धक और जानकारियों से परिपूर्ण है। आपसे प्रार्थना है कि उनके कम-से-कम एक ऐतिहासिक लेख **शोधादर्श** के हर अंक में अवश्य प्रकाशित करें। 'तीर्थक्षेत्रों के विकास' के लिए श्री अजित प्रसाद जैन के सुझाव इतने अधिक सटीक हैं कि मेरा तो विचार है कि इस पर हर तीर्थ क्षेत्र कमेटी को ध्यान देना चाहिए। जैन संस्थाओं में एक कमी मुझे भी खलती रही है कि वहां शैक्षणिक और प्रगतिवादी विचार-धाराओं की कमी है। आपके इस लेख से निश्चित रूप से उन्हें नवीन मार्गदर्शन प्राप्त होगा। कृष्ण चरित्र, ऋषभदेव की जन्म भूमि, एवं 'हिमवन्त थेरावली की वास्तविकता' लेखों में जिन तथ्यों की समीक्षा की गई है, उनसे इन बिन्दुओं पर नया प्रकाश पड़ता है।

—डा० विनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा (समस्तीपुर)

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का मत कि देवी-देवताओं की पूजा कितनी मिथ्या है, सुरक्षा के लिये शिथिलाचार शायद क्षम्य हो भी किन्तु उसे ही धर्म समझना दांभिकता होगी। या ज० एम० एल० जैन साहब का सवाल कि आत्मा किस पद्धति से प्रविष्ट होता है गर्भ में ? ऐसे परखड किन्तु सही विचार वाचकों तक पहुंचाने का असिधारा व्रत आप निभा रहे हैं। अभिनन्दन ! ऐसे ही माध्यमों द्वारा फिर वे अपवादात्मक भी क्यों न हो, भ० महावीर का मौलिक तत्त्वज्ञान जिन्दा हम रख सकेंगे।

—डा० पो० जी० मिश्रीकोटकर, नागपुर

सम्पादकीय में 'मूर्तियों की सुरक्षा हेतु' महत्वपूर्ण सुझाव, डा० भागचन्द जी 'भास्कर', डा० शशि कान्त, डा० सुधांशु, श्री धन्य कुमार जैन के आलेख कई दृष्टियों से उत्तम और उपयोगी हैं। समाचार विमर्श तथा अन्य स्थायी स्तम्भों में आपकी जागरूकता और स्पष्टवादिता से बहुत प्रभावित हूं। ऐसी निष्पक्ष, निर्भीक दूरदृष्टि, पत्रिका को निश्चित ही कालजयी बना देगी। पूज्य पिता श्री की भांति आपकी लेखनी भी अभिवन्दनीय है।

–डॉ० (श्रीमती) रमा जैन, छतरपुर,

अंक की सामग्री ज्ञानवर्द्धक एवं रोचक लगी। जहां **शोधादर्श** के अंक जैन दर्शन, धर्म, सामयिक विषयों से गुम्फित होते हैं, वहीं सचित्र कला विषयक लेख भी प्रकाशित हों तो मेरे विचार से मणिकाञ्चन संयोग रहेगा।

–डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ

शोधादर्श-३६ पूरा सुना। सामग्री चुनी हुई, ग्राह्य है। सम्पादकीय तो सदा ही स्पष्ट होती है। इस बार डा० शशि कान्त का लेख मन को छू गया।

–पं० पद्म चन्द्र शास्त्री, नई दिल्ली

आपके परिवार में सभी विद्वान हैं और स्वर्गीय डा० ज्योति जी की कृपा है एवं आशीर्वाद है। आप सभी भाई बन्धु मिल-जुल कर **शोधादर्श** के सम्पादन एवं प्रकाशन द्वारा, निर्भीक होकर, सभी सामाजिक विषयों पर मार्गदर्शन देते हैं। आप लोगों के हाथ में **शोधादर्श** का भविष्य उज्जवल है।

–श्री सबोध कुमार जैन, आरा

इतिहास-मनीषी स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी जैन के लेख "देवी-देवताओं की पूजा-उपासना" में शिथिलाचार एवं शिथिलाचार से उत्पन्न मिथ्यात्व के विरुद्ध जो आवाज उठाई गई हैं, वह पुनः पुनः दोहराये जाने की आवश्यकता है। 'हिमवन्त थेरावली की वास्तविकता" आपकी सम्यक् स्पष्टवादिता का द्योतक है। आपके इस आह्वान का भी पूर्णतः समर्थन करूँगा कि दिगम्बर जैनाचार्यों एवं विद्वानों को भी हठधर्मिता, कल्पित धारणाओं/मिथकों से सर्वथा

बचना चाहिए। "मन्दिर, मूर्ति और वैराग्यता" शीर्षक से श्री धन्य कुमार जैन ने अत्यन्त सुन्दर, सरल, समसामयिक एवं अनुकरणीय विचार प्रस्तुत किये हैं, जो कि प्रत्येक श्रमण एवं श्रावक द्वारा चिंतनीय एवं मननीय हैं। वयोवृद्ध श्री अजित प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत चिन्तन-कण "भ० ऋषभदेव की निर्वाण भूमि" के सन्दर्भ में इतना ही कहना चाहूँगा कि किसी भी निर्णय पर पहुंचने से पूर्व, अभी इस सम्बन्ध में, विशिष्ट शोध-खोज की आवश्यकता है, जिसके लिये वयोवृद्ध विद्वान ने मार्ग दिखाया है। "समाचार विमर्श" में दिये गये इस सुझाव से भी पूर्णतः सहमत हूँ कि हमें नवीन धर्मायतनों के निर्माण की अपेक्षा प्राचीन तीर्थ-क्षेत्रों, प्राचीन मन्दिरों एवं पुरा-सम्पदाओं की सुरक्षा व संरक्षा प्राथमिकतापूर्वक करनी चाहिए। कुल मिलाकर, **शोधादर्श** का यह अंक भी पूर्व अंकों की भांति, जैनाचार एवं सिद्धान्तों का सजग प्रहरी है।

—**श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त'**, अलीगढ़

'प्राचीन मराठी जैन आख्यान काव्य' के अनुसार राम तथा हनुमान की छवि हिन्दू धर्म में प्रचलित मान्यताओं से भिन्न प्रस्तुत की गयी है; परन्तु राम तथा पवनपुत्र हनुमान भारत ही नहीं, विश्व के अन्यान्य देशों में भी जहां उनकी पूजा होती है, क्रमशः लंकाधिपति रावण के संहारक और बाल ब्रह्मचारी के रूप में ही पूजनीय एवं वन्दनीय हैं। श्री धन्य कुमार जैन के अनुसार 'जब शरीर मेरा नहीं तो उसकी सुरक्षा व्यवस्था में क्यों परेशान होना?' मेरी मान्यता है कि यह शरीर ही धर्म-साधन का माध्यम है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने कहा था—'जीवेम् शरदः शतम्। पश्याम् शरदः शतम्।' यह तो उन लोगों के लिए है, जिन्होंने इस शरीर द्वारा वह सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिन्हें अब शरीर का मोह नहीं है। मूर्ति को केवल पाषाण मान लेना भी उचित नहीं है। जिस पाषाण में मूर्तिकार ने अपनी छेनी-हथौड़ी से भावनायें भरी हैं और जिसे देखकर हम प्रभावित होते हैं, वह पाषाण खण्ड कैसे? जब तक यह शरीर है, मनुष्य निष्क्रिय नहीं रह सकता।

कर्म जीवन का पर्याय है। परन्तु कर्म का विहिताविहित ज्ञान ही धर्म है और कर्म में अनासक्ति ही योग (परमात्मा का मिलन सेतु) है। साधक को या तो मन्दिर और मूर्ति-पूजा का आश्रय ही नहीं लेना चाहिए और यदि लेता है तो गुण-कथन और कीर्तन में दोष-दर्शन नहीं करना चाहिए। सब तो महावीर नहीं बन सकते, परन्तु उनके सम्मुख भक्त को माथा टेकना और आशीर्वाद लेना ही चाहिए। परन्तु अपने जीवन में उनकी शिक्षा को भी ग्रहण करना चाहिये। **शोधादर्श** जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु शोध-पथ पर अग्रसर है, यह साहसिक और श्लाघनीय कार्य है। ऐसी सुरूचिपूर्ण पत्रिका के प्रकाशन हेतु डॉ० शशि कान्त तथा सम्पादन से जुड़े सभी विद्वान् साधुवाद के अधिकारी हैं।

—डॉ० परमानन्द जड़िया, लखनऊ

परम श्रद्धेय स्व० बाबू जी डा० ज्योति प्रसाद जी की भावनाओं को समादृत करते हुए विद्वानों का अभिनन्दन कर एक श्रेष्ठ परम्परा स्थापित की गई। उसी क्रम में जीवन के विविध पक्षों पर/सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में योगदान देने वाले मनीषियों का सारस्वत—सम्मान एक अनूठा सृजनात्मक कदम है। साहित्यिक सुगन्धमयी इस आयोजन की क्रियान्विति आप सबकी सूझ-बूझ का परिणाम है। श्रद्धेया चन्दाबाई जी पर लेख/संस्मरण, बाबू जी की "सारस्वत सम्मान क्यों और कैसे ?", जैसी शानदार टिप्पणी, गुलाब चन्द्र जी का लेख "भारतीय डाक टिकटों पर जैन संस्कृति", तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति (उ० प्र०) का प्रगति प्रतिवेदन, डा० ज्योति प्रसाद जी की पुण्य तिथि का सविस्तार चित्रण, तीर्थ क्षेत्रों पर सामयिक व सार्थक साम्पादकीय, प्रकृति से सम्बद्ध जैन धर्म/जैन दर्शन की तादात्म्यवृत्ति (डा० सुधांशु जी), भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि (श्री अजित प्रसाद जी), डा० शशि कान्त जी तथा डा० हेमलता जोहरापुरकर की शोध-परक दृष्टि, सभी कुछ बहुशः पठनीय है। "गुरुगुण-कीर्तन" आपका (**शोधादर्श** परिवार का) वह दर्पण है जिसकी चमक से त्रैमासिकी की श्रेष्ठता

प्रतिबिम्बित होती है। पं० नाथू लाल जी शास्त्री का कथन सौ प्रतिशत उपयुक्त है कि "पत्रिका की सामग्री देख कर सहज ही नाथू राम जी 'प्रेमी', पं० जुगल किशोर जी 'मुख्तार' एवं पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री का स्मरण हो आता है।" उन्होंने श्री अजित प्रसाद जी प्रधान सम्पापक, सहयोगी डा० शशि कान्त जी तथा श्री रमा कान्त जी की लेखनी की प्रशंसा की है जो सर्वथा उपयुक्त है। **शोधादर्श** आज के सन्दर्भ में ऐसी पत्रिका है जिसका कलेवर प्रेरणा-स्पद, ज्ञानवर्धक, जागृति प्रदाता, विश्व बन्धुत्व भाव जगाता तथा जन-जन में आस्था का सच्चा संदेश वाहक प्रतीत होता है।

–सिंघई मोती लाल 'विजय' व श्रीमती विमला जैन, कटनी

ज्ञानवर्धक सामग्री एक ओर जहाँ साहित्य प्रेमियों को आकृष्ट करती है, दूसरी ओर जैन धर्म व जैनत्व सम्बन्धी तथ्यों को देकर छात्र-जगत में झुकाव पैदा करती है। सम्पादक मण्डल के प्रयास सचमुच प्रशंसनीय हैं।

–श्री मुकुल मोती लाल जैन 'विजय', व कु० राखी जैन, कटनी

सम्पादकीय काफी महत्वपूर्ण है। एक चौकीदार तथा वैतनिक सभी कर्मचारी का क्षेत्र पर रहने का जो सुझाव आपने दिया है, वह स्थानीय क्षेत्र के ट्रस्टी के सलाह से होना चाहिए। आपने 'क्षेत्र का सम्बद्धीकरण' का भी सुझाव दिया है। भा० तीर्थ क्षेत्र कमेटी ने इसके लिये 'प्रमाण पत्र' योजना बनायी है, इससे कुछ तीर्थ भी उनसे जुडते गये हैं। किन्तु उनके सभी नियमों का पालन स्थानीय क्षेत्र नही करते हैं।

–पं० नेमचन्द डोणगांवकर, देऊलगांवराजा

जैन संस्कृति एवं जैन विचारधारा के माध्यम से भारतीय समाज को जागृत, शिक्षित और संस्कारित करने के उद्देश्य से जैन विद्या के प्रख्यात विद्वान स्व० ज्योति प्रसाद जैन ने शोधादर्श नाम से जिस पत्रिका के प्रकाशन को प्रारम्भ किया था, उसे आप लोग निष्ठा और लगन से निरन्तर आगे बढ़ा रहे है। प्रस्तुत अंक इस बात की सम्पुष्टि करता है। इस अंक में इतिहास, धर्म, दर्शन, तीर्थ,

देवमूर्तियाँ, मन्दिर, साधु, व्रती, साधक, उपासक आदि के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जैन समाज के बढ़ते चरण स्पष्टता, ऋजुता, निष्पक्षता और दृढ़ता के साथ प्रतिपादित हैं। **शोधादर्श** की परिधि अत्यधिक विस्तृत है जो इसके 'चिन्तन-कण', 'जिज्ञासा', 'समाचार विमर्श', 'साहित्य सत्कार', 'पाठकों की दृष्टि में' आदि-आदि स्तम्भों में स्पष्ट झलकती है। ज्ञानवर्द्धक, सन्मार्ग-प्रदर्शक तथा समाज-सुधारक सामग्री से ओत-प्रोत स्पष्ट और त्रुटिहीन मुद्रण तथा आकर्षक सादगी वाली पत्रिका **शोधादर्श** के इस प्रामाणिक और शोधपरक प्रस्तुतीकरण के लिये सम्पादकत्रय हार्दिक बधाई और प्रशंसा के पात्र हैं।

—डा० ए० एल० श्रीवास्तव, लखनऊ

यह पत्रिका अपने नाम के अनुरूप एक आदर्श पत्रिका है। यह नियमित प्रकाशित हो रही है तथा इसके सभी स्तम्भ स्तर बनाये हुए अनवरत रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। साथ ही यह पत्रिका साम्प्रदायिक दुराग्रह से मुक्त है। इसमें कई बार जैन विद्वानों और उनके विचारों का प्रतिवाद भी दृष्टिगत हुआ है। इसमें प्रकाशित दिवंगत विद्वानों तथा वर्तमान विद्वानों के शोधपरक लेख जहाँ जिज्ञासु सुधी जनों की ज्ञानपिपासा शान्त करने वाले हैं वहीं जैन संस्थाओं के समाचार, जैन समाज की उपलब्धियों के विवरण तथा पाठकों के अभिमत सामान्य पाठकों के लिए रुचिकर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। अंक ३६ में प्रकाशित डा० ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'देवी-देवताओं की पूजा-उपासना', डा० भाग चन्द्र जैन 'भास्कर' का 'जीवन की निष्कपटता ही ऋजुता है', कु० नीलम जैन का 'व्यासकृत हरिवंशपुराण एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के आलोक में श्री कृष्ण चरित', तथा डा० (श्रीमती) राका जैन और डा० (सौ०) हेमलता जोहरापुरकर के शोध सार 'जीवन्धर चम्पू; एक समीक्षात्मक अध्ययन' तथा 'प्राचीन मराठी जैन आख्यान-काव्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम तीन का जहाँ धार्मिक दृष्टि से महत्व है वहां अन्तिम दो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं नवीन

सूचनायें देने वाले हैं। 'सम्पादकीय', 'विचार विन्दु', 'चिन्तन-कण', तथा 'पर्यावरण और जीवदया' शीर्षकों की सामग्री भी चिन्तन-मनन के योग्य है। इस पत्रिका की सामग्री, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी प्रमुख क्षेत्रों को अपने में समाहित किये हुए रहती है।

—डा० ओम प्रकाश त्रिवेदी, लखनऊ

'देवी-देवताओं की पूजा-उपासना' लेख पढ़कर मोक्षमार्ग के सम्बन्ध में जैन विचारधारा का स्पष्ट स्वरूप हृदयंगम हुआ। शोध-प्रबन्ध सार—'जीवन्धर चम्पू' एवं 'प्राचीन मराठी जैन आख्यान काव्य' शोध के आदर्श के अनुरूप हैं और इनसे सहज ही इन विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। 'पाठकों की दृष्टि में' स्तम्भ से इस महत्त्व-पूर्ण पत्रिका की लोकप्रियता प्रकट होती है। पत्रिका के सम्पादन में जो कुशलता लक्षित होती है, वह इसकी निरन्तर प्रगतिशीलता की परिचायक है।

—डा० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

समाज में प्रचलित कुरीतियों के सम्बन्ध में शोधादर्श में समय-समय पर जो टिप्पणियाँ और लेख प्रकाशित होते हैं, मैं उनसे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। यद्यपि इन बातों में फँसे हुए, विशेष रूप से नवधनाढ्य जैन बन्धुओं, परिवारों पर इन लेखों का कोई प्रभाव पड़ता हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। तथापि जो सत्य है, उसे हर कीमत पर कहा तो जाना ही चाहिए।

—प्रो० विमल प्रकाश जैन, दिल्ली

——

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-४

श्री कैलाश भूषण जिन्दल : अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-१८

श्री गुलाब चन्द्र जैन : राज कमल स्टोर्स, सावरकर पथ, विदिशा-४६४००१

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

डा० (श्रीमती) जैनमती जैन : श्री जैन बाला विश्राम हाई स्कूल, धरहरा, आरा-८०२३०१

श्री नलिन कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

पं० नेम चन्द डोणगांवकर : देऊलगांव राजा, (जि० बुलढाणा, महाराष्ट्र)-४४३८०४

पं० पद्म चन्द्र शास्त्री : वीर सेवा मन्दिर, २१, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

श्री पन्ना लाल जैन : मच्छरदानी वाले, फोर्ट रोड, रीवा-४८६००१

डा० (श्रीमती) मनोरमा जैन : १, सेन्ट्रल स्कूल कालोनी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

डा० मनोहर भण्डारी : शरीर क्रिया विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय, इंदौर

डा० रंजन कुमार : पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, आई. टी. आई. रोड, करौन्दी, वाराणसी-२२१००५

श्री रमा कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री राजीव कान्त जैन : रेलवे आफिसर्स बंगला नं० ५, कोठी कम्पाउन्ड, राजकोट-३६०००१

श्रीमती वासंती शाह : गन्ध कुटी, २१/६, कर्वे रोड, पुणे-४११००४

श्री वीरेन्द्र अंशुमाली : ५५४/ख/११३, विशेश्वर नगर, लखनऊ-५

डा० शशि कान्त : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४